चौधरी प्रकाशन संस्थान का तृतीय पुष्प

शतकचूर्णि व्याख्या

(आचार्यवर्य शिवशर्मा द्वारा विरचित)

सम्पादक एवं हिन्दी टीकाकार

सिद्धसागर जी महाराज

प्रस्तावना

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल

एम. ए., पी-एच. डी., शास्त्री

गम्भीरमल चौधरी

अध्यक्ष

चौधरी प्रकाशन संस्थान

भोजमाबाद (जयपुर, राजस्थान)

प्राप्ति स्थान :

गम्भीरमल चौधरी

चौधरी प्रकाशन संस्थान

मौजमाबाद, (जयपुर)

प्रथम आवृत्ति

५००

वीर परिनिर्वाण सं० २५००

१३ नवम्बर, १९७४

मूल्य ३) रुपये

मुद्रक :

मनोज प्रिन्टर्स

मोदीकों का रास्ता, किशनपोल बाजार,

जयपुर–३ (राज०)

विषय-सूची

प्रकाशकीय

चौधरी प्रकाशन संस्थान की ओर से 'शतक चूर्णि' के रूप में पाठकों के हाथों में दूसरा पुष्प देते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता है। इसके पूर्व 'सन्मतिसूत्र' का प्रकाशन किया जा चुका है। यह सब पूज्य क्षुल्लक सिद्धसागर जी महाराज की असीम कृपा एवं आशीर्वाद का फल है। जब से क्षु. सिद्धसागर जी महाराज मोजमाबाद पधारे हैं तब ही से साहित्य प्रकाशन की दिशा में कुछ न कुछ कार्य हो रहा है। महाराज श्री स्वयं ज्ञान ध्यान तपोरक्त तपस्वी हैं एवं दिन रात सबसे अधिक समय अध्ययन की ओर लगाते हैं। नवयुवकों में धार्मिक जाग्रति की ओर आपका विशेष लक्ष्य रहता है और इस दिशा में आपको अत्यधिक सफलता भी मिली है। मोजमाबाद क्षेत्र के युवकों में आपके प्रति गहरी श्रद्धा है।

मोजमाबाद प्राचीनकाल से ही जैन धर्म का केन्द्र रहा है और आज भी ढूढ क्षेत्र का यह प्रमुख नगर है । इस सम्बन्ध में डा. कासलीवाल समय-समय पर हम लोगों को बताते रहे हैं और प्रस्तुत पुस्तक में भी मोजमाबाद पर उन्होंने एक छोटा सा परिचय लिखने की कृपा की है । प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन उन्हीं की देखरेख में हुआ है। आपने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का भी कष्ट किया है। इसके लिए हम उनके पूर्ण आभारी हैं। चौधरी प्रकाशन संस्थान की स्थापना में महाराज श्री का आशीर्वाद एवं डा. कासलीवाल सा. की प्रेरणा का ही प्रमुख योगदान रहा है। आशा है कि आप दोनों का भविष्य में भी इसी तरह सहयोग मिलता रहेगा।

चौधरी प्रकाशन संस्थान का उद्देश्य छोटे-छोटे पुष्पों द्वारा जन साधारण में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को जाग्रत करना है। इसलिए उसके द्वारा धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सभी विषयों पर आध्यात्मिक पुस्तकों का प्रकाशन होगा। हमारा तीसरा पुष्प "मोजमाबाद-राजस्थान का ऐतिहासिक व सांस्कृतिक नगर" इस नाम से होगा। मेरा सभी पाठकों व स्वाध्याय प्रेमियों से अनुरोध है कि हमारे प्रकाशनों को मन्दिरों के शास्त्र भण्डारों के लिए खरीदकर इनके प्रचार व प्रसार में सहायक बनें। जितनी अधिक संख्या में इन प्रकाशनों का स्वाध्याय होगा उतना ही हम अपने प्रयास को सफल समझेंगे।

मोजमाबाद
१३ नवम्बर, ७४

गम्भीरमल चौधरी

सम्पादकीय

शतकचूर्णि आदिक ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र की भांति अन्यत्र भी कुछ परिवर्तन के साथ अपना लिए गए हैं दिगम्बर ग्रन्थों की प्राकृत चूर्णियों का अनुसरण उन लोगों में पाया जाता है किन्तु वे परिवर्तन पूर्वक अपनाई गई हैं। तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट ही है। कीर्तिधर विमल के पउमचरिय में ऋषभादिक के चातुर्मास का उल्लेख नहीं है तथा वह श्वेताम्बर मान्यता के विरुद्ध है तथा वह श्वेताम्बरों के आगमो में से पूर्व में रचा जा चुका था। विक्रम की प्रथम शती में पउम चरिय रचा गया था। किन्तु शतकचूर्णि आदिक की रचना यतिवृषी के पश्चात् हुई है। इन चूर्णियों की रचनादिक के विषय में विद्वानों का मतभेद है। शतक, सत्तरी, बृहद कम्मपयडि आदिक ग्रन्थ दिगम्बरों में भी हैं जिनका कुछ परिवर्तन के साथ श्वेताम्बरों ने भी अनुसरण किया है। मूल ग्रन्थों के विषय में भी मतभेद है। प. हीरालाल शास्त्री आदि उन्हें बहुत प्राचीन दिगम्बर आगम मानते हैं। तथा कुछ विद्वान् उनके परिवर्तित रूपों को देखकर उन्हें सातवीं आठवीं शती तक का भी मानते हैं। इसमें शक नहीं कि श्री हेमचंद्रादिक के द्वारा जो परिवर्तन के साथ इनका अनुसरण संस्कृत में किया गया है वह बारहवीं शती के लगभग का है। शतक चूर्णि आदिक की प्रतियाँ पं. माणिकचन्द जी गदिया केकड़ी ब्यावर के रानीवाले श्रेष्ठी के पास से लाये थे। तथा ये चूर्णियाँ श्वेताम्बरों की चूर्णियों से भिन्न हैं। वर्णन शैली गंगा के प्रवाह के समान है तथा श्रुतसागर को तैरने के लिये या पार करने के लिए ये तरी (दृढ नौका) के समान

हैं। इनके पढ़ने से बंधादिक के विषय में कर्म प्रकृति संबंधी ज्ञान परिमार्जित हो जाता है। डा. कस्तूरचंद कासलीवाल ने जो इसकी प्रस्तावना संपादन तथा प्रूफ संशोधन के विषय में सत् प्रयत्न किया है प्रशंसनीय है। इनके प्रकाशन में गम्भीरमल चौधरी मोजमाबाद के द्वारा अर्थव्यय करके साहित्य सेवा संबंधी महान् कार्य किया है। इनके अनुवाद के समय अर्थ को मूलानुगामी बनाये रखने के लिए ध्यान. रखा गया है। इनकी टीकाओं का अवलोकन लादूलाल एम. ए. बी./टी. के द्वारा भी हो चुका है। यदि छपने के समय कहीं अनुवाद छूट गया हो तो मूल को देखकर सुधार लेवें।

—क्षु. सिद्धसागर नरायना
वीरनिर्वाण सं० २५००.

मोजमाबाद

शाकम्भरी प्रदेश के प्राचीन नगरों में मोजमाबाद का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। इस नगर की स्थापना कब हुई और इसका नाम मोजमाबाद क्यों पड़ा इसकी अभी खोज होना शेष है। लेकिन नरायणा के समीप ही होने के कारण यह नगर भी १२वीं शताब्दी के पूर्व ही अस्तित्व में आ गया था। १६वीं शताब्दी के आरम्भ में मोजमाबाद के मैदान में आमेर के राजा रतनसिंह एवं उसके भाई राजकुमार सांगा में जमकर लड़ाई हुई और अन्त में विजयश्री राजकुमार सांगा के हाथ लगी। इसी राजकुमार सांगा ने अपने नाम से सांगानेर को नया रूप दिया और उसे फलते फूलते नगर के रूप में परिवर्तित किया। विक्रम की १६वीं शताब्दी में मोजमाबाद नगर का वैभव अपनी चरम सीमा पर था। मुगल बादशाह एवं जयपुर के शासक दोनों ही इस नगर से आकृष्ट थे। एक जनश्रुति के अनुसार जयपुर के महाराजा मानसिंह प्रथम का बाल्यकाल का कुछ समय यहीं पर व्यतीत हुआ था और उनकी माताजी का देहान्त भी इसी नगर में हुआ था। जिनकी स्मृति में यहाँ छत्रियाँ बनी हुई हैं। जो रानीजी की छत्री के नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं।

संवत् १७९३ चैत्र बुदी २ के दिन मोजमाबाद क्षेत्र में स्थित धमाणा गाँव में जोधपुर के महाराजा अभैसिंह जी पधारे थे जिनके स्वागतार्थ जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह स्वयं उपस्थित थे। वे उस गाँव में आठ दिन रहे तथा विभिन्न राजनैतिक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया और दोनों नरेश वहाँ से अपनी अपनी राजधानियों को वापिस गये।

साहित्य एवं कला की दृष्टि से मोजमाबाद की अपनी विशेषता है। इस नगर ने कवियों को जन्म दिया। यह पाण्डुलिपियाँ लिखने वालों का केन्द्र

बना, इसने मन्दिर निर्माण की कला को राजस्थान भर में जागृत किया। हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठापना करके अपना एक नया कीर्तिमान स्थापित किया तथा सैकड़ों ग्रन्थों को सुरक्षित रखकर भारतीय साहित्य को नष्ट होने से बचाया। जिस प्रकार भोपाल के तालाब प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार यह नगर भूमिगत मन्दिरों अर्थात् भौंहरों के लिए प्रसिद्ध हैं। इन भूमिगत मन्दिरों में प्रवेश करते ही अपूर्व शान्ति का अनुभव होने लगता है।

जयपुर और अजमेर के मध्य में स्थित यह नगर एक समय साहित्य निर्माण एवं उसके प्रचार का राजस्थान में प्रमुख केन्द्र रहा। विक्रम संवत् १६६० में यहाँ हिन्दी के जैन कवि छीतर ठोलिया हुए जिन्होंने इसी नगर में रहते हुए होलिका चौपाई को छन्दोबद्ध किया। उस समय यह नगर आमेर के महाराजा मानसिंह प्रथम के शासन में था। कवि ने अपनी कृति के अन्त में कृति का समाप्ति काल, नगर वर्णन एवं महाराजा मानसिंह के नाम का उल्लेख किया है जो निम्न प्रकार है।

सोलासे साठे शुभ वर्ष,
फाल्गुण शुक्ल पूर्णिमा हर्ष।
सोहै मोजमाबाद निवास,
पूजै मन की सगली आस।
सोहे राजा मान को राज,
जिहि बांधों पूरन लग पाज।
सुखी सबै नगर में लोग,
दान पुण्य जाने सहु भाग।
यह विधि कलयुग में दिन राति,
जाएँ नहीं दुख की जाति।
छीतर ठोल्यो बिनती करे,
हिवड़ा मांहि जिन वाणी धरे।

छीतर ठोलिया के एक वर्ष पूर्व यहाँ के निवासी नानू गोधा के आग्रह से भट्टारक वादिभूषण के शिष्य आचार्य ज्ञानकीर्ति ने संस्कृत में यशोधर चरित नामक काव्य की रचना करके यहाँ की साहित्य गतिविधियों की वृद्धि में अपना योग-दान दिया। नानू गोधा उस समय महाराजा मानसिंह के प्रधान आमात्य (मन्त्री) थे। जब कवि ने इस ग्रन्थ की समाप्ति की तो नानू गोधा महाराजा मानसिंह के साथ बंगाल के अकबर नगर में थे। कवि ने अपनी कृति के परि-चय भाग में महाराजा मानसिंह को राजाधिराज की उपाधि से सम्बोधित किया तथा लिखा है कि उनके चरण कमल अनेक राजाओं के मुकुटों से पूजित थे, अपनी दान प्रकृति से उन्होंने सारे विश्व को सन्तुष्ट कर रखा था तथा जिसका यश सूर्य के समान चारों दिशाओं में व्याप्त था। ऐसे महाराजा का महान अमात्य था नानू गोधा जिसका यश भी अपने स्वामी के समान चारों दिशाओं में व्याप्त था। जिन्होंने कैलाश तथा सम्मेद शिखर की तीर्थ यात्रायें की थी तथा जिनकी नव साहित्य निर्माण करवाने की ओर विशेष रुचि थी। यशोधर चरित एक प्रबन्ध है। इस काव्य की एक पाण्डुलिपि जयपुर के महा-वीर भवन के संग्रहालय में उपलब्ध है। प्राप्त पाण्डुलिपि सं. १६६१ अर्थात् अपने रचनाकाल के केवल २ वर्ष पश्चात् की ही लिखी हुई है।

सं. १६६४ (सन् १६०७) ज्येष्ठ कृ. ३ के दिन यहाँ विशाल स्तर पर एक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह का आयोजन किया गया था। वह दिन इस नगर के इतिहास का स्वर्ण दिन था। इस दिन यहाँ दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण होने के पश्चात् एक बड़ा भारी समारोह आयोजित किया गया जो पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के नाम से विख्यात है। प्रतिष्ठाकारक थे महाराजा मानसिंह के विश्वस्त अमात्य स्वयं नानू गोधा। इसलिए यह समारोह राजकीय स्तर पर आयोजित किया गया। इसमें राजस्थान के ही नहीं समूचे देश के विभिन्न ग्रामों एवं नगरों से लाखों की संख्या में जैन एवं जैनेतर समाज एकत्रित हुआ और भगवान ऋषभदेव की मूर्ति सहित हजारों की संख्या में जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठाविधि सम्पन्न हुई। सम्भव है इस

समारोह में मुगल बादशाह अकबर के प्रतिनिधि तथा स्वयं महाराजा मानसिंह भी सम्मिलित हुए हों, क्योंकि प्रतिष्ठा समारोह एवं मन्दिर निर्माण को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे नानू गोधा ने उस समय अपनी समस्त विशाल सम्पत्ति का मुक्त हस्त से वितरण करके उसका संस्कृति, साहित्य एवं कला के विकास में सदुपयोग किया था। इस प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठापित जैन मूर्तियां राजस्थान के मन्दिरों में ही नहीं किन्तु मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश के विभिन्न मन्दिरों में प्रतिष्ठापित हैं। इस प्रतिष्ठा से मोजमाबाद नगर स्वयं गौरवान्वित हो गया। राजस्थान में उसका विशिष्ट स्थान बन गया। इसी परिवार में संवत् १८१६ में दौलतराम गोधा हुए जिनका जयपुर दरबार ने अपना रूमाल देकर सत्कार किया।

अपनी कला एवं विशालता के लिए शीघ्र ही नानू गोधा द्वारा निर्मा-णित नगर का यह जैन मन्दिर सारे राजस्थान में प्रसिद्ध हो गया। लोग सुदूर प्रान्तों से दर्शनार्थ आने लगे और सैकड़ों वर्षों तक यह उनका तीर्थ स्थान बना रहा। मन्दिर के ऊपर जो तीन शिखर हैं वे मानों दूर से ही जन साधारण को अपनी ओर आमन्त्रित करते हैं तथा साथ ही में जगत् को सम्यक श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् आचरण के परिपालन का सन्देश देते हैं। मन्दिर के प्रवेश द्वार से आगे एक विशाल चौक और आता है। जिसके निज मन्दिर के प्रवेश वाला द्वार का भाग अत्यधिक कलापूर्ण है। इसे आठ भागों में विभक्त किया गया है तथा श्वेत एवं लाल पाषाण पर कला की अद्भुत कृतियों को उतारा गया है। मुख्य द्वारों पर विभिन्न भाव नृत्यों के साथ देव देवियों के चित्र हैं। देव तथा देवियां पूर्णतः समलंकृत तथा साज सज्जा सहित दिखाये गये हैं। एक चित्र में सरस्वती अपने हाथ से हंस को मोती चुगा रही है। इन देवियों की विभिम्न नृत्य मुद्रायें देखकर ऐसा आभास होने लगता है मानों दर्शकगण किसी इन्द्र सभा में आ गये हों। प्रवेश द्वार पर गणेशजी की मूर्ति खुदी हुई है जिससे जैन एवं ब्राह्मण संस्कृति के समन्वय का पता चलता है। कहीं पर हाथी अपनी सूंड से जल भर कर तीर्थंकरों का

अभिषेक कर रहा है तो कहीं सिंह वाहिनी देवी की मूर्ति दिखाई देती है। सचमुच लाल एवं श्वेत पाषाण पर दर्षित यह कला भारतीय एवं राजस्थानी कला का अच्छा प्रस्तुतिकरण है।

इस मन्दिर में दो भूमिगत मन्दिर भी हैं। जिनमें तीर्थंकरों की भव्य एवं कलापूर्ण मूर्तियाँ विराजमान हैं। सभी मूर्तियाँ सं० १६६४ में प्रतिष्ठापित हैं। और अपने नानू गोधा की कीर्ति को अनन्तकाल तक स्थाई रखने को उद्यत हैं। भगवान आदिनाथ की जो विशाल पद्मासन मूर्ति है उसमें कलाकार ने मानों अपनी समस्त कला को उडेल दिया है। यह उसके वर्षों की साधना होगी। ऐसी सौम्य एवं मनोज्ञ मूर्तियाँ बहुत कम मन्दिरों में उपलब्ध होती हैं।

मन्दिर निर्माण का कार्य सम्भवतः बराबर चलता रहा होगा और १७८० में ही छत्री निर्माण के साथ वह समाप्त हुआ होगा। छत्री में जो लेख अंकित है उसके अनुसार इसके निर्माण में उस समय ११०१ रु० लगे थे। चौधरी नन्दलाल के पुत्र जोधराज ने इसके निर्माण कराने में अपना योग दिया। मकराना के नागराज बलदेव छत्री निर्माण के प्रमुख शिल्पकार थे।

मोजमाबाद के तालाब के किनारे पर स्थित त्रिपोलिया द्वार आज भी अपने प्राचीन वैभव की याद दिला रहा है। इस पर अंकित जैन मूर्तियों से पता चलता है कि यह भी कोई जैन सांस्कृतिक स्थान था। कुछ वर्षों पूर्व तक यहाँ तीज गणगौर पर अच्छा मेला भरता था। इसके पास आसजी का मन्दिर है कहते हैं मुस्लिम शासकों को यहाँ नागा सम्प्रदाय के एक साधु ने अपने चमत्कार दिखला कर गायों की रक्षा की थी।

मोजमाबाद हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के संग्रह की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ के ग्रन्थ संग्रहालय में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी के ग्रन्थों की पांडुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं, जो दर्शन, साहित्य एवं

कला पर शोध करने वाले विद्यार्थियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं। प्रवचनसार (कुन्दकुन्द) जैनेन्द्र व्याकरण, षट्कर्मोपदेशरत्नमाला (अमर कीर्ति) त्रिषष्टि स्मृति (आशाधर) योगसार (अमितगति), तत्वार्थ सूत्र टिप्पण (योगदेव), तथा अपभ्रंश के आदि पुराण पर प्रभाचन्द्र का टिप्पण इन्हीं ग्रन्थों के संग्रह में है। इसी भंडार में कृष्ण-रुक्मणिवेली की एक अत्यधिक प्राचीन एवं शुद्ध पाण्डुलिपि सुरक्षित है। जिस पर लाखा चारण की टीका है। लाखा चारण कृत टीका वाली पाण्डुलिपि अभी तक राजस्थान के अन्य भण्डारों में उपलब्ध नहीं हो सकी है। यशोधर चरित की दो सचित्र पाण्डुलिपियां शास्त्र भण्डार की अमूल्य धरोहर हैं।

नगर के बाहर जो जैन नसियां है उसके मुख्य द्वार पर एक लेख अंकित है। यह लेख संवत् १९३२ का है। जिसमें हिन्दू और मुसलमान बन्धुओं से धार्मिक स्थानों की पवित्रता बनाये रखने का आग्रह किया गया है। यहाँ चार भुजा का प्राचीन वैष्णव मन्दिर भी है। अभी गत आठ दस वर्ष पूर्व ही यहाँ गाँव में विचरने वाले एक सांड का स्मारक बनाया गया है, जो आस-पास के ग्रामीण जनों की श्रद्धा का केन्द्र बनता जा रहा है। मानव मात्र ही नहीं किन्तु पशु तक के प्रति स्नेह एवं श्रद्धा का यह अद्भुत स्मारक है।

जयपुर
१-१०-७४

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रस्तावना

अभिधान राजेन्द्र कोश में चूर्णि पद का निम्न लक्षण किया गया है—

अल्पबहुलं महत्थं हेउ-निवाओव सग्गगंभीरं ।

बहुपाय-मवोच्छिन्नं गयरणयसुद्धं तु चुण्णपयं ॥

अर्थात् जिसमें महान् अर्थ हो, हेतु निपात और उपसर्ग से मुक्त हो, गम्भीर हो, अनेक पदसमन्वित हो, अव्यवच्छिन्न हो और तथ्य की दृष्टि से जो धाराप्रवाहिक हो उसे चूर्णिपद कहते हैं। चूर्णि साहित्य दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में पाया जाता है। इस साहित्य का वही महत्व है जो आगम साहित्य का है। लेकिन श्वेताम्बर परम्परा की चूर्णियों से दिगम्बर आचार्यों द्वारा रचित चूर्णि सूत्रों की शैली और विषय-वस्तु बहुत भिन्न है। श्वेताम्बर परम्परा में जैनागमों पर प्राकृत अथवा संस्कृत मिश्रित प्राकृत में जो व्याख्याएं लिखी गयी हैं वे चूर्णियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके यहां विशाल चूर्णि साहित्य मिलता है और प्रायः प्रत्येक आगम ग्रन्थ पर चूर्णियां मिलती हैं।

लेकिन दिगम्बर परम्परा में भी चूर्णि सूत्र साहित्य का महत्व कम नहीं है। आचार्य वीरसेन के उल्लेखानुसार चूर्णि सूत्रकार का मत 'कषाय पाहुड' और षट्खण्डागम के मत के समान प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्त्ति (वि० ११ वी शताब्दी) ने लब्धिसार ग्रन्थ में पहिले यतिवृषभ के ग्रन्थ के मत का निर्देश किया है तदनन्तर भूतबलि के मत का।[1] इससे स्पस्ट है कि चूर्णि सूत्र मूल आगम ग्रन्थों के समान ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं। आचार्य यतिवृषभ आचार्य भूतबलि एवं पुष्पदन्त के समकालीन थे। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने इनका समय वि० सं० ५२६ से पूर्व निश्चित किया है।[2] आगम व्याख्याता की दृष्टि से उनकी उल्लेखनीय सेवाएं हैं। उनके ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता है कि उनके समक्ष षट्खंडागम, लोक-विनिश्चय, संगाइणी और लोकविभाग जैसे ग्रन्थ विद्यमान थे। और उन्होंने इन ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन करते हुए चूर्णि सूत्रों की रचना थी। यदि यतिवृषभ चूर्णि

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री पृष्ठ सख्या ८२।

२. वहीं। पृष्ठ संख्या ८५।

सूत्रों की रचना न करते तो बहुत सम्भव है कषायपाण्डु का अर्थ ही स्पष्ट नहीं हो पाता। आचार्य यतिवृषभ चूर्णि सूत्रों के प्रथम रचयिता थे इसलिए उनका भी वही महत्व है जितना षट्खंडागम के रचयिता आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त का। वैसे आचार्य वीरसेन ने तो षट्खण्डागम के सूत्रों को भी चूर्णिसूत्र कहा है इसी तरह वेदना खण्ड में जो व्याख्यान रूप गाथायें हैं धवलाकार ने उन्हें चूर्णि सूत्र कहा है।

आचार्य यतिवृषभ के पश्चात् होने वाले चूर्णि सूत्रकारों में उच्चारणाचार्य हुए। उन्होंने मौलिक रूप से चली आयी श्रुतपरम्परा को शुद्ध उच्चरित रूप बनाये रखने के लिए उच्चारण की शुद्धता पर विशेष जोर दिया। यद्यपि यतिवृषभ एवं उच्चारणाचार्य के विषय निरूपण में यत्र तत्र विभिन्नता दिखलाई पड़ती है लेकिन पर्यायार्थिक नय और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से विचार करने में उसमें कोई अन्तर नहीं आता। उच्चारणाचार्य का समय द्वितीय शताब्दी का अन्तिम पाद एवं तृतीय शताब्दी का प्रथम पाद माना जाता है।

प्रस्तुत शतक चूर्णि के रचयिता आचार्यवर्य शिवशर्मा हैं जिनका उल्लेख चूर्णिकार ने आरम्भ में किया है। चूर्णिकार ने उनके प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए लिखा है कि शब्द, तर्क, व्याकरण, एवं कर्म सिद्धान्त के जानने वाले, अनेकवाद में विजय प्राप्त करने वाले द्वारा यह शतक ग्रन्थ लिखा गया है। प्रस्तुत आचार्य शिवशर्मा कब हुए, उनकी अन्य कृतियां और कौन-कौन सी हैं तथा उनके गुरु का नाम क्या था इसके विषय में यह शतक चूर्णि मौन है। श्वेताम्बर साहित्य में चतुरंगीय नामक तृतीय अध्ययन की वृत्ति में आवश्यक चूर्णि, वाचक (सिद्धसेन) और शिवशर्मा का उल्लेख हुआ है। शिवशर्मा का "जोगा पयडि पएसं ठिति अणुभागं" गाथा की प्रथम पंक्ति भी उद्धृत की गयी है। उनके अनुसार शिवशर्मा ११ वीं शताब्दी के विद्वान् थे।

लेकिन शतक चूर्णि के रचयिता आचार्य शिवशर्मा दिगम्बर जैनाचार्य थे ऐसा उनके इस ग्रन्थ से स्पष्ट पता लगता है। उनका समय भी ११ वीं शताब्दी से पूर्व का ही होना चाहिए। क्योंकि चूर्णिकार ने जिन प्राकृत गाथाओं को उद्धृत की है वे आचार्य नेमिचन्द्र के ग्रन्थों की गाथाएं हैं। इस शतक ग्रन्थ पर जिस आचार्य ने चूर्णि लिखी, उसके बारे में भी स्वयं चूर्णिकार मौन है।

शतक चूणि पूर्णतः सिद्धान्त ग्रन्थ है इसमें जीव समास एवं गुणस्थान पर आधारित उच्चस्तरीय चर्चाओं का वर्णन किया गया है। वर्णन लालित्य एवं माधुर्य गुण युक्त है तथा कथन शैली आकर्षक है।

शतक चूर्णि का प्रस्तुत भाग प्रथम खण्ड के रूप में प्रकाशित किया गया है। इस खण्ड में ५५ गाथाओं को लिया गया है। पहिले गाथा दी गई है और फिर उस पर प्राकृत में व्याख्या दी गई है जो अत्यधिक सरल एवं विस्तृत है। व्याख्या के पश्चात् उसकी विस्तृत चूर्णि लिखी गई है। इस प्रकार गाथा तो सूत्र रूप में है और उसके विषय का विस्तृत वर्णन व्याख्या एवं चूर्णि के माध्यम से किया गया है। प्रथम आठ गाथा सूत्रों में उपयोग, विधि, योगविधि एवं जीवसमास का वर्णन किया गया है। नौंवी गाथा से चौदह गुणस्थानों का विस्तृत वर्णन प्रारम्भ होता है। दसवीं गाथा सूत्र में मार्गणाओं का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम लिखा है कि देव और नारकियों में चार गुणस्थान होते हैं, तिर्यञ्चों में पांच तथा मनुष्य गति में चौदह गुणस्थान होते हैं। इस गाथा की चूर्णि में मार्गणाओं का वर्णन किया गया है लेकिन यह सब चूर्णिकार की सर्जना है। ११ वीं गाथा में किस गुणस्थान में कौनसा उपयोग होता है इसका वर्णन मिलता है। १२ वीं एवं १३ वीं गाथाओं में गुणस्थानों में मिलने वाले योगों का वर्णन किया गया है।प्रथम, दूसरे एवं चौथे गुणस्थान में तेरह योग होते हैं। तीसरे में दस योग होते हैं। १४ वीं, १५ वीं एवं १६ वीं गाथा में प्रत्यय बंध पर चर्चा की गई है। १७ वें गाथा सूत्र में साता एवं असाता वेदनीय का बंध कैसे होता है इसका विवेचन हुआ है। १८ वीं एवं १९ वीं गाथा में दर्शनमोह एवं चारित्र मोह के बंध के कारणों पर चर्चा की गयी है। २० वीं गाथा से लेकर २८ वीं गाथा तक आयु के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। २९ वीं गाथा से ३४ वीं गाथा तक उदीरणा का वर्णन मिलता है। मिथ्यादृष्टि वगैरह प्रमत्त संयत पर्यन्त आयुकाल की आवली मात्र शेष रहने तक आठ कर्मों की उदीरणा करते हैं। उसी तरह आयु की चरमावली में सात कर्म की ही उदीरणा करता है। आगे की गाथा सूत्रों में आठ कर्मों एवं उनकी प्रकृतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस प्रकार शतक चूर्णि में गुणस्थान पर आधारित चर्चाओं का बहुत ही सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत शतक चूर्णि को प्रकाश में लाने का श्रेय आदरणीय क्षु० सिद्धसागर जी महाराज को है। क्षुल्लक जी महाराज अनवरत स्वाध्याय एवं ग्रन्थ शोधन तथा लेखन के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। वे काफी समय से मौजमाबाद में हैं

और वहां के शान्तिपूर्ण वातावरण में साहित्य सर्जना में लगे हुए हैं। ऐसे अज्ञात एवं महत्वपूर्ण आगम ग्रन्थ को प्रकाश में लाने के लिए समस्त जैन समाज उनका पूर्ण आभारी है।

ग्रन्थ को प्रकाशित करने का श्रेय चौधरी प्रकाशन संस्थान के अध्यक्ष श्री गम्भीरमलजी चौधरी को है। श्री गम्भीरमलजी की समाज एवं साहित्यिक सेवा में पर्याप्त अभिरुचि है तथा वे अपने क्षेत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय कार्यकर्ता हैं। ऐसे उपयोगी ग्रन्थ को प्रकाश में लाने के लिए उन्हें हार्दिक बधाई है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

पूज्य क्षुल्लक सिद्धसागर जी महाराज

ॐ नमोऽर्हद्भ्यः

शतक चूर्णि व्याख्या

सिद्धो णिद्धूय-कम्मो सद्धम्मपणायगो तिजगणाहो ।
सव्व जगुज्जोय-करो, अमोह वयणो जयइ वीरो ।।१।।

हिन्दी तात्पर्यानुवाद टीका

प्रसिद्ध निर्धूत कर्म सद्धर्म प्रणायक त्रिजगत् नाथ सर्व जग उद्योतक अमोघ वचन वीर जयवंत होता है ।

प्रश्न–सिद्ध पद का प्रयोग चूर्णि सूत्रकार ने चूर्णि के प्रारम्भ में क्यों किया ?

उत्तर–शतक चूर्णिकार ने प्रारम्भ में वीर या महावीर को लोक प्रसिद्ध बतलाने के लिए, मंगल कामना से कार्य-सिद्धि के लिए 'सिद्ध' विशेषण का प्रयोग किया है ।

प्रश्न–'णिद्धूय कम्मो' विशेषण क्यों दिया है ?

उत्तर–अनंत चतुष्टय विरोधी या कैवल्य के विरोधी कर्मों को धो दिया है इस को सूचित करने के लिए 'णिद्धूय कम्मो' यह विशेषण दिया है । इस से वीर को वीतराग बतलाया है ।

प्रश्न–'सव्व जगुज्जोय-करो' यह विशेषण क्यों हैं ?

उत्तर–यह विशेषण वीर को सर्वज्ञ बतलाने के लिये है ।

प्रश्न–'सर्व जगत्' का क्या अर्थ है ?

उत्तर–सम्पूर्ण पदार्थ या सम्पूर्ण द्रव्य के उत्पाद व्यय और ध्रौव्य को सर्व जगत् कहते हैं । कहा भी है : "स्थित्युत्पत्तिलयात् गच्छति इति जगत्" जो स्थिति उत्पत्ति और लय को प्राप्त हो वह जगत् है । सर्व का अर्थ है सम्पूर्ण द्रव्य । सम्पूर्ण द्रव्यों के उत्पाद व्यय और ध्रौव्य को या सर्व जगत् को बतलाने के लिए 'सर्व जगत्' पद है ।

ध्रौव्य सामान्य है और पर्याय उत्पाद व्यय सहित है वह विशेष है । सम्पूर्ण सामान्य और विशेषों को जो प्रकाशित करता है वह सर्वजगत् उद्योतकर कहलाता है ।

प्रश्न–'अमोह वयणो' यह विशेषण क्यों है ?

उत्तर–यह वीर के मोह रहित अमोघ वचन को या मोक्ष मार्ग नेतृत्व को या हितोपदेशी पने को सूचित करने के लिए है।

प्रश्न–'ति-जग-णाहो' तीन जगत् के नाथ यह पद क्यों है ?

उत्तर–यह सौ इन्द्रों के द्वारा प्राप्त पूज्यता को सूचित करने के लिए है

प्रश्न–'जयइ वीरो' का क्या अर्थ है ?

उत्तर–'महावीर भगवान् जयवंत है'। इसको सूचित करने के लिए है।

सव्वेवि गणहरिंदा सव्व जगीसेण लद्धसक्कारा।
सव्व जग-मज्झयारे सुय केवलिणो जयंति सया ॥२॥

प्रश्न–'सव्वेवि गणहरिंदा' सम्पूर्ण गणधरेन्द्र कैसे हैं ?

उत्तर–'सम्पूर्ण जगत के ईश्वर से प्राप्त किया है सत्कार जिन्होंने' इसको सूचित करने के लिए 'सव्व जगीसेणलद्ध सक्कारा यह विशेषण दिया है।

प्रश्न–'सव्व जगमज्झयारे' का क्या अर्थ है ?

उत्तर–'सर्वजगत के मध्य में' यह उसका अर्थ है।

प्रश्न–'सुय केवलिणो सया जयंति' का क्या अर्थ है ?

उत्तर–श्रुत केवलि सदा जयवंत होते हैं।

जिणवर-मुह-संभूया गणहर विरइय सरीर–पविभागा।
भविय-जण-हियय दइया सुयमयदेवी सया जयइ ॥३॥

प्रश्न–इस तीसरे मंगल चूर्णि सूत्र का क्या अर्थ है ?

उत्तर–जिनवर मुख से उत्पन्न हुई गणधर से विरचित द्वादशांग भेद वाली भव्य-जन प्रिया श्रुतमयी देवी सदा जयवंत है।

प्रश्न–ग्रन्थ रचना का निमित्त क्या है ?

उत्तर–शतक कर्त्ता आचार्यवर्य शिवशर्म के ग्रन्थ रचने के निमित्त को चूर्णि सूत्रकार चूर्णि द्वारा बतलाते हैं।

सम्मदंसणणाणचरणतवमएहिं सत्थेहिं अट्ठविह कम्मगंठि जाइ-जरा मरण-रोग-अन्नाण-दुक्ख बीय-भूयं छिंदित्ता अजरममर-मरुजमक्खयमव्वाबाह परम णिव्वुइसुहं कह नाम भव्वत्ता पावेज्जत्ति आयपरहितेसीण साहूणं पव्वित्ति।

अम्हो अज्ज कालियाणं साहूणं दुस्समाणुभावेणं आयु-बलमेहा-करणाइ-गुणेहिं परिहीयमाणाणं अणुग्गहत्थं आयरिएण कयं सम परिमाण णिप्फन्नणामगं सतगं ति पगरणं।

'जीव सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप रूप शास्त्रों से आठ प्रकार की ग्रंथि को जो कि जाति, बुढ़ापा, मरण रोग अज्ञान दुःख का

बीज भूत है छेद कर अजर अमर अरोग अक्षय अव्याबाध परम निर्वृत्ति सुख किस प्रकार प्राप्त करे, इस प्रकार के निमित्त से स्वपर हितैषी साधुओं की प्रवृत्ति होती है निर्निमित्त नहीं।

अब आज कल के साधु जो कि दुषम काल के महात्म्य से आयु बल, मेधा करण-परिणाम आदिक गुणों से ह्रास को प्राप्त हो रहे हैं उनके अनुग्रह के लिये आचार्य के द्वारा रचा हुआ शत परिमाण (पूर्ण सार्थक) निष्पन्न नाम वाला 'शतक' ऐसा प्रकरण है।

'तमणुवक्खाइस्सामि' 'उसके अनुकूल मैं व्याख्यान करूंगा' यह चूर्णि व्याख्या की प्रतिज्ञा है

'तत्थ पुव्वं ताव सम्बन्धो भण्णइ' उसमें से पहले तब तक सम्बन्ध बतलाया जाता है।

"संज्ञा निमित्तं कत्तारं परिमाणं प्रयोजनं।
प्रागुक्त्वा सर्वतन्त्राणां पश्चद्वक्ता तं वर्णयेत् ॥१॥"

प्रश्न–इस चूर्णि में उद्धृत श्लोक का क्या अर्थ है? नाम निमित्त कर्ता परिमाण और प्रयोजन को पहले कह कर पश्चात् वक्ता सर्व शास्त्रों के तं अर्थात् उस व्याख्यान को करे! या उसका वर्णन करे!

इति वचनात्, एतस्स पगरणस्स किं णामं? किं णिमित्तं? केण वा कयं? किं परिमाणं? किं प्रयोजनं? इति।

तत्थ णामं दसप्पगारं "गुण १ णोगुण २ आदाणे ३ पडिवक्ख ४ पहाण ५ णिस्सितं ६ चेव। संयोग ७ माण ८ पच्चय ९ अणादि सिद्धंत १० विहियंति ॥१॥"

प्रश्न-नामादिक का व्याख्यान करना चाहिये इस प्रकार का आगम का वचन होने से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रकरण का नाम क्या है? इस की रचना का निमित्त हेतु क्या है? और वह किस के द्वारा रचा गया है उस ग्रन्थ की श्लोक संख्या कितनी है! और किस लिए वह रचा गया है? इस प्रकार के प्रश्न होने पर कहते हैं कि—

स०–उनमें से नाम के दस प्रकार हैं। गुण नाम १ नो गोण्यनाम २ आदान नाम ३ प्रतिपक्ष ४ प्रधान ५ निसृत ६ संयोग ७ मान ८ प्रत्यय ९ और अनादि सिद्धांत १०।

तत्थ एयं पगरणं पमाण णिप्फन्न णामगं सतगं ति।

उन दस प्रकार के नामों में से यह प्रकरण 'प्रमाण-संख्या' इस सार्थक नाम से 'शतक' संज्ञा निष्पन्न हुई है। चूंकि यह शतगाथा प्रमाण को लिये हुए है अतः 'शतक' कहलाता है।

प्रश्न—किं णिमित्त' कयं ? किस निमित्त से रचा गया हैं ?
उत्तर—त्ति णिमित्तं भणियं । ग्रन्थ निर्माण के निमित्त को बता आये हैं इस
लिए पुनः उस को नहीं कहते है ।
प्रश्न—केण कयं ? किस के द्वारा रचा गया है ?

समाधानति, शब्द-तर्क-न्याय-प्रकरण-कर्म-प्रकृति-सिद्धांत-विजाणएण अरोग-वाय-समालद्धविजएण सिव सम्मायरियणामधे ज्जेण कयं ।

शब्द, तर्क, न्यायप्रकरण, कर्मप्रकृति सिद्धान्त के जानने वाले अनेक वाद में प्राप्त-विजय **शिव-शर्म-आचार्य** नाम वाले के द्वारा यह शतक ग्रन्थ रचा गया है ऐसा चूर्णि व्याख्याकार कहते हैं ।

शंका—किं परिमाणं ? परिमाण कितना है ?
स०—गाहा-परिमाणेणं सयमेत्त', अक्खरादि-परिमाणेणं संखेज्जं, अत्थपरिमाणेण
अपरिमिय परिमाण मरोग भेयभिन्नं ।

गाथा के परिमाण से शत मात्र है । अक्षर आदि के परिमाण से संख्यात है । अर्थ-तात्पर्य परिमाण से अपरिमित परिमाण वाला अनेक भेद से विभाजित हैं ।

शंका—किं पयोयणं ? इस ग्रन्थ को रचने का क्या प्रयोजन हैं ?
स०—ति, जीवाणं उवओगजोग-पच्चयबंधोदयो दीरणा-संजोग,-बंध-विहाणादि
अभिगमणत्थं तं चेव णाणं दंसणं च, तदो बंधाइ निरोहणसमत्थे चरणे
उज्जमो, ततो मोक्ख इति एयं पयोयणं भणिय ।

इस प्रकार की आशंका का समाधान यह है कि:—

जीवों को, उपयोग, योग, प्रत्यय, बंध, उदय, उदीरणा, संयोग, बंध-विधान आदि का बोध कराने के लिये । और वही ज्ञान और दर्शन है, उससे बंधादिक का निरोध करने में समर्थ आचरण में उद्यम होता है । उससे मोक्ष होता है । इस प्रकार से यह ग्रन्थ का प्रयोजन बतलाया है ।

संबन्धोत्थ एवं संबधातीतस्स पगरणस्स इमा आइमा गाहा मंगल-भिधेयाधार-सत्थसम्बन्धत्था—

मंगल—गाथा

अरहंते भगवंते अणुत्तर परक्कमे पणमिऊणं ।
बंध सयगे निबद्ध' संगहमिणमो पवक्खामि ॥

संबन्धोत्थ (संबन्ध से उत्पन्न या उठने वाली) एवं संबन्धातीत प्रकरण की यह आद्य गाथा मंगल और अभिधेय के आधार भूत शास्त्र के संबन्ध को बतलाने के लिए हैं ।

अनुत्तर पराक्रम वाले भगवान् अरहंत को नमस्कार करके बंध शतक में निबद्ध इस संग्रह को कहता हूँ, सुनो !

प्रथम–गाथा सूत्र

सुणह इह जीव गुण संनिएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ ॥१॥

इस शतक प्रकरण में जीव स्थान संज्ञा वाले और गुणस्थान संज्ञा वालों के विषय में दृष्टिवाद से प्राप्त होने वाली सारयुक्त कतिपय गाथाओं को कहता हूँ । सुनो !

व्याख्या—सुणह त्ति सोत्तविसयत्तातो सुयणाणस्स सुयनाण संबज्झइ । कहं ? अधिगतच्छाओ दिट्ठिवायातो गाहाओं सुणहत्ति । तं च सुयणाणं मंगल । कम्हा ? भण्णइ णंदी भावमंगलं ति काउं, मगलपरिग्गहियाणि सत्थाणि णिप्फत्तिं गच्छंति ।

'सुनो !' ऐसा कहने का तात्पर्य कहते हैं । सुनने का सम्बन्ध यहां श्रुतज्ञान के साथ सम्बन्धित है । कैसे ? दृष्टिवाद से जिनका अर्थ जान लिया गया है ऐसी गाथाओं को सुनो ! ऐसा तात्पर्य है ।

और वह श्रुतज्ञान मंगल रूप है । मंगल रूप कैसे है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि :—

नंदी भाव मंगल है (इसलिए) जो शास्त्र मंगल परिग्रहीत हैं या मंगल रूप से परिगणित है वे परिपूर्णता को प्राप्त होते हैं ।

सिस्स-पसिस्सस्स परं परया पइट्ठाहिंति चेति तो सुणह सद्दो मंगलत्थो । और वे शिष्य प्रशिष्य की परम्परा से प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं । ऐसा जानना चाहिये इससे तो यह सिद्ध होता है कि 'सुणह' शब्द मंगल के लिये है ।

इह जीवगुण संनिएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ वोच्छं कइ वइयाओ गाहाओ त्ति अभिधेया धारत्थो अभिधेया उवओगादओ, दिट्ठिवायाओ त्ति, सत्थ सम्बन्धत्थो, एस पिंडत्थो ।

'यहां जीव-गुण संज्ञा वाले स्थानों के विषय में सारयुक्त कतिपय गाथाओं को कहता हूं' इस प्रकार, अभिधेय के आधार को बतलाने के लिये है । अभिधेय 'उपयोगादिक है ।' 'दृष्टिवाद से प्राप्त' यह शास्त्र सम्बन्ध के लिये है । यह समुदाय अर्थ है संक्षिप्त अर्थ या पिण्डार्थ है ।

इयाणिं अवयवा विवरिज्जंति-सुणह त्ति-सीसामंतणवयणं । किं कारण-मामन्त्रयति ? इति चेत् ? उच्यते, सीसायरिय संबद्ध परोवकारो व दरिसणत्थं सोतिंदिउवजोगजणणत्थं च आमन्त्रयति ।

अब गाथा के अवयवों का वर्णन किया जाता है । 'सणुह त्ति' सुनो ऐसा जो वचन है वह शिष्य का आमंत्रण वचन है ।

किसलिये या किस कारण आमन्त्रित करता है । यदि ऐसा पूछो तो उसको कहा जाता है कि—शिष्य-आचार्य संबद्ध परोपकार को बतलाने के लिये और श्रोत्रेन्द्रिय उपयोग को उत्पन्न करने के लिये आमन्त्रण किया जाता है ।

'इहत्ति' अस्मिन् प्रकरणे । 'इह' ऐसा जो शब्द गाथा सूत्र में है उसका अर्थ है 'इस प्रकरण में' ।

'जीवगुण-सन्निएसु ठाणेसु' त्ति । ऐसे जो सूत्र में पद हैं उनमें से 'संन्निय सद्दो' संज्ञा वाला यह शब्द और ठाणसद्दो य स्थान शब्द जीव और गुण, प्रत्येकं प्रत्येक के साथ में 'परिसमाप्यते' जोडा जाता है । जीव सन्निएसु ठाणेसु गुण सन्निएसु य ठाणेसुत्ति जीवट्ठाण-गुणट्ठाणणामधेज्जेमु त्ति भणियं होति । एदेसिं अत्थो निद्दे से वक्खाणिज्जिहिति ।

'जीव संज्ञा वाले स्थानों में और गुण संज्ञा वाले स्थानों मे' इस प्रकार जीव स्थान नाम वालों में ऐसा तात्पर्य होता हैं । इनका अर्थ निर्देश में व्याख्यान में बतलाया जायगा ।

एतेसिं विन्यास-प्रयोजनं पूर्वं जीवास्तित्वचिन्तनं, तत्सिद्धौ शेष प्रपञ्च सिद्धिरिति, जीवट्ठाणाइं प्रथम न्यस्तानि । इनके विशेष स्थापन के प्रयोजन पूर्वक जीव के अस्तित्व का चिन्तन है चूंकि उसके सिद्ध होने पर शेष विस्तार की सिद्धि होती है इसलिए जीव स्थानों को पहले न्यस्त किया है ।

विद्यमानां जीवनां गुणचिन्तनमिति तदनन्तर गुणठाणाणि एवं विन्नासे पयोयणं ।

विद्यमान जीवों के गुण स्थान का विचार किया जाता है इसलिये जीव-स्थान के पश्चात् 'गुणठाणाणि' 'गुण स्थान' ऐसे न्यास करने में या स्थापन करने में प्रयोजन है ।

'सारजुत्ताओ' त्ति, सारो अत्थो, अत्थजुत्ताओ । 'सार' अर्थ को कहते हैं जो अर्थ युक्त हैं वे सार युक्त कहलाती हैं ।

काओ ताओ गाथाओ ? त्ति संबज्झइ वोच्छं कइवइयाओ त्ति । वोच्छं भणामि कइवयाओ गाहाओ त्ति भणियं होइ । गीयन्तेऽर्थास्तस्यामिति गाथा । ताओ गाहाओ एयंमि पगरणे जीवट्ठाण गुणट्ठाणान्याश्रित्य अत्थमत्ताओ थोवाओ कहेमि ताओ सुणह त्ति संबज्झइ ।

स्वेच्छा-कहण परिहरणत्थं सत्थ गौरवत्थं वा सत्थ सम्बन्धं भणामि–'दिट्ठवायाओ' त्ति आयरिय पायमूले विणएण सिक्खियाओ 'दिट्ठवायाओ' कहेमि ।

वे गाथाएं कौनसी हैं ? इस प्रकार सम्बन्धित किया जाता है कि कतिपय गाथाओं को कहता हूँ । 'वोच्छं' कहता हूं 'कतिपय गाथाओं को' ऐसा उसका तात्पर्य है ।

प्रश्न–गाथा किसे कहते हैं ?

उत्तर–उसमें अर्थ गाये जाते हैं–बतलाये जाते हैं इसलिए उसे गाथा कहते है ।

वे गाथाएं एक प्रकरण में जीवस्थान और गुणस्थान का आश्रय कर के प्रयोजन मात्र अर्थवाली अल्प गाथाओं को कहता हूं उन को सुनो ! इस प्रकार सम्बन्धित किया जाता है ।

स्वेच्छा कथन के परिहार करने के लिए या शास्त्र के गौरव–महत्व के लिये शास्त्र सम्बन्ध को कहता हूँ । 'दिट्ठिवायाओ' त्ति इसका अर्थ है आचार्य के पादमूल में विनय से दृष्टिवाद से सीखी हुई है अत: 'दिट्ठिवायाओ' ऐसा कहा है ।

प्रश्न–किं परिकम्म-सुत्त-पढमाणुओगपुव्वगय चूलिया मइयातो सव्वाओ दिट्ठिवायाओ कहेसि ?

क्या परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वगत चूलिका मय सम्पूर्ण दृष्टिवाद से सीखी हुई को कहता है ?

उत्तर–न, इत्युच्यते पूव्वगयाओ कहेमि ।

नहीं, पूर्वगत से सीखी हुई को कहता हूँ । ऐसा कहा जाता है ।

प्रश्न–किं उप्पायपुव्व अग्गेणिय जाव लोग बिन्दु साराओ त्ति एयाओ चोद्दस–विहाओ सव्वाओ पूव्वगयाओ कहेसि ?

उत्तर–न, इत्युच्यते अग्गेणियातो बीयाओ पुव्वातो ।

क्या उत्पादपूर्व आग्रायणी से लोग बिन्दु सार पर्यन्त, ये चौदह प्रकार सब पूर्व से सीखो कहता है ?

उत्तर–नहीं, आग्रायणी नाम के दूसरे पूर्व से कही जाती है ।

किं अट्ठवत्थु परिमाणाओ अग्गेणिय पूव्वातो सव्वातो कहेसि ? न इत्युच्यते पुव्वंते अवरंते धुवे अधुवे एत्थं चयण (चयण) लद्धीणाम-पंचमं वत्थु तातो पंचमातो वत्थु तो कहेमि ।

क्या आठ वस्तु परिमाण वाले आग्रायणीय पूर्व की सब वस्तुओं से कहता है ? नहीं, पूर्वांत अपरांत, ध्रुव, अध्रुव में जो यहां–च्यवन लब्धि नाम की पांचवी वस्तु है उस पंचम वस्तु से

प्रश्न–किं सव्वातो वीस पाहुड़मात्र मेत्ता सो कहेसि ?

क्या सम्पूर्ण वीस पाहुड़ प्रमाण मात्र से कहता है ।

उत्तर–न, इत्युच्यते, तस्स पंचमस्स वत्थुस्स चउत्थं पाहुडं कम्मपगडी नामधेज्जं ततो कहेमि ।

नहीं, उस पंचम वस्तु का चौथा पाहुड़ कम्म प्रकृति नाम का है उससे कहता हूं ।

तस्स चउव्वीस अणुओगदाराइं भवन्ति तं जहा 'कइ १ वेदणा २ य फासे ३ कम्मं ४ पगडी य ५ बंधण ६ णिबंधे ७ पक्कम ८ उवकम्मु ९ दए १० मोक्खे ११ पुणसंकमे १२ लेस्सा १३ ।।१।। लेसाकम्मे १४ लेसापरिणामे १५ तह य सायमस्साते १६ दीहे हस्से १७ भवधारणी य १८ तह पोग्गला १९ अत्ता णिहत्तमणिहत्तं च २० णिकाइय मणिकाइय २१ कम्मट्ठिति २२ पच्छिमखन्धे २३ अप्पाबहुगं च २४ सव्वत्थओ ।।३।।' त्ति किं सव्व तो चउवीसाणुओगदार-मइयातो कहेसि ? न, इत्युच्यते, तस्स छट्ठमणुओगदारं बंधणं ति ततो केहमि । तस्स चत्तारि भेदा तं जहा, बंधो, बंधगो बंधणीयं बंध विहाणं ति' किं सव्वातो चउव्विहाणु-ओगदारातो कहेसि ? न इत्युच्यते, बंधविहाणं ति चउत्थ मणुओगदारं ततो कहेमि । तस्स चत्तारि विभागा ।

कर्म प्रकृति पाहुड़ के चौवीस अनुयोग द्वार होते हैं वे इस प्रकार हैं:— कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बंधन निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्या कर्म, लेश्या परिणाम, सामसात, दीर्घह्रस्व, भवधारणीय, पुद्गलात्म, निधत्तनिधत्त, संनिकाचित-अनिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिम स्कन्ध, अल्पबहुत्व, सर्वार्थ २४ ।

प्रश्न–क्या सम्पूर्ण २४ अनुयोग द्वारमय वाले से कहता है ?

उत्तर–नहीं, उसका छठा अनुयोग द्वार बंधन है उससे कहता हूँ । उसके चार भेद हैं वे इस प्रकार हैं—बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान ।

प्रश्न–क्या सम्पूर्ण चारों अनुयोग द्वारों से कहते हैं ?

उत्तर–नहीं, बंधविधान नामक चौथा अनुयोग द्वार है उससे कहता हूँ । उसके चार विभाग हैं । वे कौनसे हैं ?

तं जहा पगइबंधो, ठिइबंधो, अणुभागबंधो, पदेसबंधो त्ति मूलुत्तरपगइ भेयभिन्नो, ततो चउव्विहातोवि किंचि २ समुद्धरिय २ भणाभि । सत्थ संबंधो भणितो । वे इस प्रकार हैं :—

प्रकृति बंध, स्थितिबंध, अनुभाग बंध और प्रदेश बंध । वह बंध मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति भेदवाला है ।

उस चार प्रकार के बंध में से कुछ कुछ ले ले कर कहता हूँ ।

शास्त्र संबन्ध बतला दिया गया

पुव्वि जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु सारजुत्ताओ गाहाओ भणामि त्ति भणिबं, ताओ केरिसि ? सत्थाहिगाराओ त्ति तासिं अत्थाहिकारणि सूणत्थं दो दार-गाहओ—गाथा सूत्र २–३

उवओग जोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिया अत्थि जप्पच्चइओ बंधो होइ जहा जेसु ठाणेसु–२। बंधं उदयमुदीरण विहिं च तिण्हंपि तेसिं संजोगं बंधविहाणे य तहा किंचि समासं पवक्खामि–३।

पहले यह बतलाया गया है कि :—'जीवस्थानों और गुण स्थानों में सार युक्त गाथाओं को कहता हूँ।' वे कैसी हैं ? सत्वाधिकार की हैं ऐसा जानना चाहिए। अर्थाकार के निरूपण करने के लिये वे दो गाथाएँ हैं।

दूसरे और तीसरे गाथा सूत्र का अर्थ

उपयोग विधि और योग विधि जिन गुण-जीव-स्थानों में जितनी है। और जिस प्रत्यय से जहां जिन स्थानों में बंध है तथा बंध को, उदय-विधि को, उदीरणा विधि को और उनके संयोग को बंध विधान में जैसा कहा है वैसा कहता हूँ किन्तु किंचित् संक्षिप्त कहता हूं।

व्याख्या :—

उवयोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिया अत्थि त्ति, उपयुज्यत इति उपयोगः आसन्नो योगो उपयोगो, उव जुज्जति इति वा उवओगो, अविरहिय जोगो वा उवजोगो संसारत्थाणं णिव्वुयाणं च जीवाण सव्वकालं तेण जोगो त्ति काउं उवओगो वुच्चति। किं कारणं ? जीवस्वभावत्वात्। तव्विरहिओ जीवो ण भवइ ति।

उपयोग विधि जिन जीवस्थानों और गुण स्थानों में जितनी हैं इति (ऐसा जानना चाहिए)।

उप योजित किया जाता है अतः उपयोग है उपयुक्त होता है इसलिए उपयोग है या अविरहित योग उपयोग है चूंकि संसारस्थ और निर्वाण प्राप्त जीवों के सदा काल उसके साथ योग होता है इसलिये उपयोग कहते हैं।

प्रश्न—सदा काल उसके साथ योग तादात्म्य क्यों है।

उत्तर—चूँकि वह जीव का स्वभाव है उसके बिना उपयोग के बिना जीव नहीं होता है।

सो दुवि हो–सागारोव ओगो अणगारोव ओगो य।

वह दो प्रकार का है—साकारोपयोग और अनाकार उपयोग।

सागारोव ओगो सव्वावहारणं व्वाइविसेस विन्नणमित्यर्थः।

(सामान्य और विशेष आत्मक) वस्तु के स्वरूप का निश्चय या अव धारण साकार उपयोग है अर्थात् रूपादिक का विशेष विज्ञान साकार उपयोग है।

तेसिं चेव सामन्नत्थाव बोहो खंधावारोपयोगवत् सो अणागारोव ओगो।

और उन्हीं का सामान्य अर्थावबोध स्कंधावार के उपयोग की भांति अनाकार उपयोग है।

पंचविहं णाणं अन्नाणंतिग च सागारोवयोगो।

पांच प्रकार का ज्ञान है और तीन भांति का अज्ञान साकारोपयोग है।

ज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान, अज्ञान अर्थात् मिथ्याज्ञान।

चक्खु-आइ-चउविहं दंसणं अणागारोवओगो।

चक्षुदर्शन आदि चार प्रकार का दर्शनोपयोग (है वह) अनाकार उपयोग हैं।

तत्थ पंचविहं णाणं आभिणिबोहि याइ। जो पांच प्रकार का ज्ञान है वह अभिनिबोध आदिक है।

तत्थ पंचण्हमिंदियाणं मणोछट्ठाणं उग्गहादयो चत्तारि भेया तेहिं य सुयाणुसारेण घडपड संखाइ विन्नाणं संपयकालीयं तमाभिणिबोहियं।

पांच प्रकार के ज्ञान में, पांच इन्द्रिय और छठे मन के निमित्त से होने वाले अवग्रहादिक चार भेद और उनसे श्रुतानुसार घट पट संख्या आदि का विज्ञान सप्रति काल में होता है वह आभिनिबोधिक है।

इंदिय-मणो-णिमित्तं अतीतादिसु अत्थे सुसुयाणुसारेण जं णाणं उप्प-ज्जइ तं सुयणाणं, आभिणिबोहियं पि तत्थत्थि जेण तं पालिइ।

इन्द्रिय और मन के निमित्त से अतीत आदि अर्थों में श्रुतज्ञान के अनुसार जो ज्ञान उत्पन्न होता हैं वह श्रुतज्ञान हैं आभिनिबोध भी उस में है जिससे कि वह पाला जाता है।

इंदिय-मणो-णिरवेक्खं अणावरीय-जीव-पएस-खवओसम-णिमित्तं साक्षात् ज्ञेय ग्राहि तदवधिज्ञानं। प्रदीप-ज्वाला-कटकान्तर्गत-विनिर्गत-प्रकाश घटादि प्रकाशवत्।

इन्द्रिय और मन से निरपेक्ष आवरण रहित जीव प्रदेश में क्षयोपशम के निमित्त से होने वाला साक्षात् ज्ञेय को ग्रहण करने वाला वह अवधि ज्ञान है जैसे प्रदीप का ज्वाला और कटक के अन्तर्गत से निकले हुए प्रकाश और घटादि प्रकाश।

मणत्तेणं गहेऊणं पोग्गले जाणइ जीवो जेहिं ते मणो भणंति, तेसिं पोग्गलाणं पज्जाया मणोपज्जाया तेसु जाणं मणपज्जवणाणं। तहेव सुद्धा जीवपदेसा परिच्छिंदन्ति त्ति पोग्गले णिमित्तं काउण तीयाणागय वट्टमाणे भावे पलि ग्रोवमासंखेज्जइ भागे पच्छाकडे पुरे कडे समोव समाओ माणुसखेते वट्टमाणे जाणइ ण परतो, तं मणपज्जवणाणं।

मनरूप से ग्रहण करके पुद्गल के विषय को जीव जिनसे जानता वे मन हैं। उन पुद्गलों की पर्यायें मन पर्य्यायें हैं उनके विषय में जो ज्ञान होता है वह मन:पर्यय ज्ञान है। वैसे ही शुद्ध प्रदेश जानते हैं अत: वे पुद्गल को विषय मिमित्त बनाकर अतीत अनाग वर्तमान पदार्थ में पल्योपम के असख्यातवें भाग में पश्चात्वर्ती और पूर्ववर्ती विषय को क्षयोपशय से मनुष्य क्षेत्र मे वर्तमान को जानते है उस परिमाण से अधिक को नहीं उतना जानना है वह मन:पर्यय ज्ञान है।

केवल सकलं सम्पूर्णं जीवस्स णिस्सेसावरण खय-संभूयं, अहवा सव्व-दव्व-पज्जाय-सकला बोहणेण वा केवल अच्चंत खाइयं केवलणाणं।

केवल अर्थात् अतीन्द्रिय केवलज्ञान अखण्ड है या परिपूर्ण हैं। जीव के नि:शेष ज्ञानावरण के क्षय से उत्पन्न हुआ है अथवा सम्पूर्ण द्रव्य और सम्पूर्ण पर्यायों को सम्पूर्ण या सकल रूप से जानने के कारण भी केवल (ज्ञान) अत्यंत क्षायिक केवलज्ञान है।

मूलिल्लेसु तिसु णाणेसु अण्णाण भावो वि होज्जा, मिच्छत्तोदया, पित्तोदया-व्याकुली-कृत चित्तस्य शुक्लरूप विपर्ययात् पीताभासि रूपवत् मति श्रुतावधयश्च विपर्यासं गच्छन्ति।

मूलवर्ती तीन ज्ञानों में अज्ञान भाव भी हो सकता है। मिथ्यात्व के उदय से मुक्त मति श्रुत और अवधि ज्ञान पित्त के उदय से व्याकुल किये गये चित्त के शुक्लरूप विपर्यय से पीले-आभास वाले चित की तरह विपर्यास को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—कथं ? कैसे ?

उत्तर—कटुकालाबु—गद्रव्योपक्षिप्त-क्षीर-सर्करादि-द्रव्य-विपर्ययासवत्। भाजन-विशुद्धितश्च दव्वाणमविणासो दिट्ठो जहा सुपरि-सुद्धालाबु-दव्वोपक्षित्त-खीरादिदव्वाविवत्तिवत् तथा च तत्वार्थ श्रद्धानं अहवा विस-सम्मीस-ओसह-संपर्क वत् मइघातोववूहणं च।

जैसे कटु तुम्बी गत द्रव्य में रक्खे गये क्षीर शर्करादि द्रव्य विपर्यास को प्राप्त होते हैं। और भाजन की विशुद्धि से द्रव्यों का विनाश विपर्यसरूप नहीं देखा जाता है जैसे कि (राख जल द्वारा) सुपरि शुद्ध तुम्बी द्रव्य में रक्खा

गया क्षीर आदि द्रव्य विकृत नहीं होता है और वैसे तत्वार्थ श्रद्धान होता है। अथवा विष मिश्रित औषध के संपर्क की भांति मति घात भी पाया जाता है।

एते अट्ठ सागारोव ओगा। ये आठसाकार उपयोग हैं।।

अरणागारोव ओगो चउव्विहो चक्खुदंसरणाइ चक्खु ंदिय समान्नत्थाव बोहो चक्खु-दंसणं। सेसिदियमणो समान्नत्थाव बोहो अचक्खुदंसणं। ओहि-णाणेण सामन्नत्थावगहणं ओहि दसणं। केवलणाणेण सामन्नग्गहणं केवल दंसणं।

अनाकार उपयोग चार प्रकार का है चक्षु दर्शन आदि। चक्षु इन्द्रिय से सामान्य अर्थावबोध चक्षु दर्शन है। शेष इन्द्रिय और मन से सामान्य अर्थ का अवबोध (या ग्रहण) अचक्षु दर्शन है अवधि ज्ञान के (द्वारा) सामान्य अर्थ का ग्रहण अवधिदर्शन है। केवल ज्ञान दर्शन के (द्वारा) जो सामान्य ग्रहण है वह केवल दर्शन है।

एवमेते बारस उवयोगा परूविया इस प्रकार ये बारह उपयोग बतलाये गये।

प्रकृतयों में निराकार ज्ञान दर्शन और साकार ज्ञान सविकल्प बोध है।

'जोगो' त्ति "जोगो विरियं थामो, उच्छाह-परक्कमो तहा चेट्ठा।
सत्ती सामत्थं चिय जोगस्स हवंति पज्जाया ।।१।।

वीरियंतराइ खयोवसम-जरिणएण पज्जाएण जुज्जइ जीवो अणेणेति योगो, अहवा जुंजइ जीवो वीरियंतराइ खयोवसम जणियपज्जाय मिति जोगो "मणसा वाया काएण, वधिजुत्तस्स वीरिय-परिणामो। जीवस्स अप्पणिज्जे सजोग सन्नो जिणक्खाओ ।।१।।"

तेजो जोगेण जहा रत्तात्ताइ घडस्स परिणामो।
जीव-करणप्प ओगे बीरियमवि तहप्प परिणामो ।।२।।

सो मण-जोगाई तिविहो दुब्बलस्स यष्टिकादि-द्रव्यवत् उवट्ठंभकरो, अहवा जोगो वावारो यणमाइणं।

प्रश्न—सूत्र में 'योग' ऐसा शब्द आया है [वह योग क्या है? योग का स्वरूप क्या है? उसके पर्यायवाची कौन है?]

उत्तर—उसका समाधान निम्न प्रकार से हैं: —

"योग, वीर्य, थाम, (शक्ति) उत्साह, पराक्रम, चेष्टा शक्ति तथा सामर्थ्य ये योग की पर्यायें हैं (योग के पर्यायवाची हैं)।" वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हुए इस पर्याय के द्वारा जीव युक्त होता है वह योग है अथवा जीव वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न पर्याय को जोड़ता है वह

योग है।" मन वचन या काय से अवियुक्त जीव का निजी वीर्य परिणाम योग संज्ञा वाला जिनेन्द्र के द्वारा बतलाया गया है जैसे अग्नि के संयोग से रक्त अरक्त आदि घड़े का परिणाम होता है वैसे जीव के कारण प्रयोग के हेतु से वीर्य भी निजी परिणाम वाला होता है। वह मनोयोग आदि के भेद से तीन प्रकार का है, जैसे कि दुर्बल की लाठी आदिक अवलंबन रूप है वैस वह भी सहयोग करने वाला है अथवा मन आदिक का व्यापार योग है।

मण जोगो चउव्विहो सच्चमणोजोगो जाव असच्चामो समणो जोगो।

सत्यमनों योग से लेकर अनुभय मनोयोग तक मनोयोग चार भांति का है।

मण जोगस्स सच्चतं मोसत्तं सच्चमोसत्तं असच्च मोसत्तं वा णत्थि, किंतु णोइंदियावरण-खयोवसमेण मण-णाण-परिणयस्स जीवस्स बलाधार भूयस्स जोगस्स सहचरियत्तातो सच्चादिव वदेसो, जहा बालस्य बलाधाणकारणं अन्नं पाणा इति।

अहवा जोगस्सेव पाहन्न विवक्खया सच्चास च्चाइ परिणामो, जहा बाहिर कारणनिरवेक्खो नाण-परिणामो तच्चातच्चववएसो भवति। एवं वाया करणेण जोगो वइजोगो।

वइजोगोवि चउव्विहो तहा चेव। सच्च मोसत्तं कहमिति चेत्? भन्नंति, तं जहा-असोगवणं चपयवणमिति। अन्नेसु वि रुक्खेसु विज्जुमाणेसु असोगवणं चंपयवण मेवेति, णाण, ववहारो वा तस्स बलाधाण कारण भूतो जोगोवि तव्वदेस भागी भवति।

मनोजोग के सत्यत्व असत्यत्व सत्य-मृषापन या असत्य-मृषापन नही है किंतु नो इन्द्रियावरण के क्षयोपशम से मनज्ञान रूप परिणत जीव के बलाधान का कारण अन्न और पान है।

अथवा योग का ही प्रधान विवक्षा से सत्य असत्य आदि परिणाम होता है जैसे बाह्य कारण निरपेक्ष ज्ञान तत्व और अतत्व व्यपदेश वाला होता है। इस प्रकार वाचाकरण के साथ योग वचन योग है।

वचन योग भी उसी प्रकार चार भाँति का है 'सत्य-मृषापन' कैसे है? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं। वह इस प्रकार है:—जैसे अशोकवन, चंपकवन, अन्य वृक्षों के विद्यमान होने पर भी अशोकवन चंपकवन ही है ऐसा ज्ञान या व्यवहार उसके बलाधान का कारण भूत है। योग भी उसी प्रकार उस व्यपदेश का भागी होता है।

कायजोगो सत्तविहो, तं जहा—ओरालिय कायजोगो, ओरालिय-मिस्स-कायजोगो, वे उव्विय, वे उव्विय–मिस्सओ आहारगो, आहारग मिस्सओ, कम्म-इग–कायजोग इति।

तत्थ ओरालियमिति, ओरालं उरलं महत् वृहच्चेति एगट्ठं। उरालमेव ओरालियं ओराले हवं वा ओरालियं।

कहमुदारत्तं ? भन्नइ—पदेसो असंखेज्ज गुणहीणत्तादो ओगाहणातो असखेज्जगुणब्भिहिय मिति।

ओरालिय काएण जोगो ओरालिय काय जोगो। ओरालिय मिस्स काय-जोगोत्ति मिस्समिति अपड़िपुन्नं, जहा गुड़ मिस्सं अन्न-दव्वं गुडमिति बण ववदिस्सति, अन्नमिति व न ववइस्सइ, गुडेतर दव्वेण अपड़िपुन्नत्ताओ, एव मिहावि ओरालिय कम्मइग-सरीर-द्रव्य-मिश्रत्वात् मिश्र व्यपदेशः।

काय योग सात प्रकार का है वह इस प्रकार है :—औदारिक काय योग, औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रियिक काय योग, आहारक, आहारक मिश्र और कार्मण काय योग। इति।

उनमें से 'औदारिक' ऐसा काय योग है। ओराल उदार, उरल, महत्, बृहत् ये एकार्थ वाची हैं उराल ही-उदार है औदारिक है उदार निमित्त मे से होने वाला औदारिक है।

उदार पना कैसे है ? कहते हैं—प्रदेश की अपेक्षा असख्य गुणा–हीन होकर भी अवगाहना की अपेक्षा से असख्यात गुण-अधिक है। इति।

औदारिक काय के साथ जो योग है वह औदारिक काय योग है। औदारिक मिश्र काय योग भी से मिश्र अपरिपूर्ण है जैसे गुड़ से मिला हुआ अन्य द्रव्य गुड़ व्यपदेश को नही पाता, न अन्न संज्ञा को चूंकि गुड़ से इतर द्रव्य से वह मिला हुआ है निखालिस नही है इसी प्रकार औदारिक और कार्मण शरीर द्रव्य का मिश्रण होने से मिश्र संज्ञा होती है।

अथवा सरीर-कज्ज-पयोयणा करणाओ मिस्सं, अपरिनिष्ठित घटवत्। जहा अपरिनिट्ठितो घड़ो जलधारणादिसु असमत्थो घड़ोवि घडववदेसं न लभते, एवमिहावि अपडिपुन्नत्तातो अपरिणिट्ठित्तो त्ति मिस्समिति ववदिस्सते एवं सव्वत्थ मिस्स-विही।

विविह इड्ढि-गुणजुत्तमिति वेउव्वियं अहवा त्रिविहा क्रिया विक्रिया, विक्रया एव वैक्रियं, विक्रियायां वा भवं वैक्रियं वे उव्विय-काएण जोगो वेउव्विय-काय जोगो मिश्रं पूर्ववत्।

णिपुणाणं वा णिद्धाणं वा सुहुमाणं वा आहारय-दव्वाणं सुहुमतरमिति आहारकं, आहारेइ अणेण सुहुमे अत्थे इति वा आहारगं अहारग-काएण जोगो आहारगकाय जोगो। मिश्रं पूर्ववत्।

अथवा शरीर के कार्य प्रयोजन को नही करने से मिश्र योग होता हैं जैसे कि अपरिपूर्ण घड़ा। जैसे अपूर्ण बना घड़ा जल के धारण आदि कार्यों में असमर्थ है घड़ा होकर भी घड़ा इस संज्ञा को प्राप्त नहीं होता है। इसी प्रकार इस मिश्रयोग के विषय में भी अपूर्ण होने से अपरिनिष्ठ है इसलिये मिश्र कहलाता है इसी प्रकार सर्वत्र मिश्रयोग की विधि है !

नाना प्रकार की अणिमादिक ऋद्धि गुण युक्त वैक्रियिक है अथवा विविध क्रिया विक्रिया है। विक्रिया ही वैक्रियिक है अथवा विक्रिया में होने वाला वैक्रियिक है। वैक्रियिक काय के द्वारा योग वैक्रियिक काय योग है। मिश्र पूर्ववत् है।

निपुण या स्निग्ध या सूक्ष्म भी आहारक द्रव्यों का सूक्ष्मतर ऐस आहारक है। इसकी सहायता के द्वारा जीव सूक्ष्म अर्थों को जानता है इसलिये भी आहारक है। आहारक काय के द्वारा जो योग है वह आहारक काय योग है। मिश्र पूर्ववत् है।

कम्ममेवेति कम्मइगं, कम्मणि भवंपवा कम्मइगं। कम्म-कम्मइगाण-मणाणत्तमितिचेत्? तन्न. कम्मइगस्स कम्मइय-सरीर-णामोदयनिष्पन्नत्वात्, किंतु कम्मइग-सरीर-पोग्गलाण कम्मपोग्गलाणं च सरिस वग्गणत्तातो तंमि चेव तस्स ववदेसो। सव्व-कम्मप्परोहणुप्पातगसुह-दुक्खाण बीय भूयं कम्माइग सरीरं, तेण जोगो कम्मइग-काय जोगो। एवमेते पन्नरस-जोगा परूविवा।

कर्म ही कार्मण है या कर्म में होने वाला कार्मण है। कर्म और कार्मण के विषय में इससे अज्ञान प्राप्त होता है यदि ऐसा कहते हो तो वह ठीक नहीं है क्योंकि कार्मण का कार्मण शरीर नाम कर्म के उदय से निर्माण होता है। किन्तु कार्मण शरीर पुद्गलों के और कर्म पुद्गलों के समान वर्गणा होने से उसमे ही उसका व्यपदेश होता है।

सम्पूर्ण कर्म प्ररोहण का उत्पादक और सुख दुःख का बीज भूत कार्मण शरीर है उसके द्वारा जो योग है वह कार्मण काय योग है।

इस प्रकार ये पदरह काय योग बतलाये गये हैं।

'उवजोगाजोग विहित्ति। विधिसद्दो पत्तेय पत्तेयं संबज्झइ-उवओग-विहि जोग विही/विहाणं भेदो विगप्पो जेसु य ठाणेसु त्ति/जीवट्ठाण गुण ट्ठाणेसु जत्तिया अत्थि त्ति/जावदिया अत्थि अमुगंमि जीवट्ठाण-गुणट्ठाणं मि य जत्तिया उवओगा जोगाय संभवति त्ति एयंमि पगरणे एयं भणति।

'अप्पच्चइम्रो बंधो' ति, पच्चयो हेउ कारणं णिमित्तं एगट्ठं, पच्चयो चउव्विहो मिच्छत्तं, असंजमो, कसाया जोगा ति । अमुगमि गुणट्ठाणे अमुग पच्चइगं कम्मं बज्झइ ति एयंपि एत्थ भन्नइ । 'होइजहा' इति णाणावरणा-दीणं कम्माणं बंधो जहा होइत्ति विसेमपच्चाम्रो सूइम्रो, एयंपि भिन्नइ' जेसु, ठाणेंसु' त्ति उवरिल्ल पएण सम संबज्झइ ।

'उपयोग-योग विधि' इति । ऐसा कहा गया हैं विधि शब्द प्रत्येक के साथ सबंधित होता है । उपयोग-विधि, योगविधि । विधान, भेद और विकल्प जिन स्थानों में है जीवस्थान और गुणस्थानों में जितने हैं । अमुक जीव स्थान और गुण स्थान में जितने हैं । और जितने उपयोग योग संभव हैं इस प्रकार एक प्रकरण में यह कहता है ।

'जिस प्रत्यय से बंध होता है' ऐसा सूत्र में कहा है प्रत्यय, हेतु, कारण, निमित्त ये एकार्थवाची हैं । प्रत्यय चार प्रकार का है मिथ्यात्व. असयम कषाय और योग । अमुक गुणस्थान में अमुक प्रत्यय से बंध होता है यह भी यहां बतलाया गया है । 'होइजहा' अर्थात् ज्ञानावरणादिक का बंध जैसे होता है इस प्रकार विशेष प्रत्यय सूचित किया है 'यह भी कहा जाता है' जिन स्थानों में इस प्रकार के पद के साथ संबंधित किया जाता है ।

जेसु गुणट्ठाणेसु बंधोदयो जत्तिया अत्थित्ति एयंपि एत्थ वुच्चइ ।।२।।

'बंध उदयं उदीरणा विधि च' ति विधि सद्दो पत्तेयं संबज्झइ । बंधं विगप्पो उदयविगप्पो उदीरणा-विगप्पो य । ते जेसु ठाणेसु जत्तिया संभवंति त भन्नति । 'बधो' त्ति । सुहुम बायरेहिं पोग्गलेहिं घट धूमवत् णिरंतरं निचितेलोके कम्मजोगं पोग्गले घेतुं सामन्नविसेसपच्चएण जीव-पएसेसु कम्मत्ता ते परिणामणं बंधो वुच्चइ उक्तं च:—

"जीव परिणाम हेत्तुं कम्मत्ता योग्गला परिणमति ।
पोग्गल कम्मणिमित्तं जीवेवि तहेव परिणमइ ।।१।।"

तस्सेव बंधावलिया तीतस्य विवाग-पत्तस्स अणुभवणं उदयो ।

उदयावलिया तीताणं अकालपत्ताणं ठीइण उदीरिय उदीरिय उदयाव-लियाए पक्खिवियदलियं पयोगेण उदयपत्तठिइए सह अणु भवणं उदोरणा ।

'जिन स्थानों में बंध उदय जितने हैं' यह भी प्रकृत में बतलाया जाता हैं ।

'बंध-उदय और उदीरणा विधि को' इसमें विधि शब्द प्रत्येक के साथ संबंधित करना चाहिए । बंध विकल्प, उदय विकल्प और उदीरणा विकल्प

के जिन स्थानों में जितने संभव हैं' उसको बतलाते हैं। 'बंध' ऐसा कहा है। सूक्ष्म और बादर पुद्गलों के द्वारा घडे और घूम की भांति निरंतर भरे हुए लोक में कर्म योग्य पुद्गलों सामान्य और विशेष प्रत्यय के निमित्त से जीव प्रदेशों में ग्रहण कर्म रूप का परिणमन बंध है कहा भी है: —

"जीव के परिणाम के हेतु को पाकर कर्म रूप से पुद्गल परिणमन करते हैं तथा पुद्गल कर्म के निमित्त से जीव भी उसी प्रकार परिणमन करता है ।।१।।"

उसी के बंधावली से अतीत विपाक प्राप्त का अनुभव उदय है। उदयावली से अतीत अकाल प्राप्त स्थिति को उदीरित करके उदयावली में क्षेपणकर दलित कर प्रयोग से उदय प्राप्त स्थिति के साथ अनुभवन उदीरणा है।

'तिण्हपितेसि संजोगं' ति बंधोदग्रो दीरणाणमेव संवेहो संजोगो सो अमूगंमि ठाणे अमुको संभवइत्ति तं भन्नइ। 'बंध विहाणे' ति बंधस्स विहाणं बंध विहाणं बंध भेद इत्यर्थः।

बंधो चउव्विहो, पगइबंधों, ठिइबंधो अणुभागबंधो पएसबंधो य। चउण्हवि बंधाणं मोयगदिट्ठतो। जहा-कोइ मोयगो समिति, गुड-घृत-कटुहुंडादि-दव्व-संबंधो, कोइ वायहरो, कोइ पित्तहरो, कोइ निरोगो, कोइ कप्फहरो कोइ मारगो. कोइ बलकरो, कोइ बुद्धिकरो कोइ वामोहकरो, एव कम्माणं प्रकृतिः स्वभावः कोइ णाणमावरेइ, कोइ दंसणं कोइ सुख दुक्खाइ वेयणमित्यादि।

'उन तीनों के संयोग का 'अर्थात् बंध उदय और उदीरणा का संवेध-संयोग। वह अमुक स्थान में अमुक सभव है। उसको कहा जाता है। 'बंध विधान में अर्थात् बंध का विधान बंध विधान है बंध भेद।

बंध चार प्रकार का है प्रकृतिबंध स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध। चारों बंधों के लिए मोदक का दृष्टान्त है। जैसे कोई मोदक समूह समिति-गुड़-घी-कुटकी, हूंड आदि द्रव्य संबंध वाला है। कोई वातनाशक है। कोई पित्तनाशक है, कोई निरोग है, कोई कफ नाशक हैं, कोई मारक है, कोई बल कारक है कोई बुद्धिकर है कोई व्यामोह कर है इस प्रकार कर्मों की प्रकृति या कर्मों का स्वभाव कोई ज्ञान को ढकता है कोई दर्शन को आवरण करता है कोई सुख दुख वेदन इत्यादि को कराता हैं।

तस्सेव मोयगस्स काल णियमणं अविनाभिस्वेन ग्राठिई। तस्सेव णिद्धमहुराइणं एगगुण-दुगुणाइ अणुभाग-चिंतणं अणुभागो। तस्सेव

समियाइ-दव्वाणं-परिमाण चितणं ठिइबंधो। तस्सेव सव्वदेसोवघाइ-अघाइ-एक्क-दुग-तिग-चउट्ठाण-सुभासुभ-तिव्वमंदाइ चिंतणं अणुभाग बंधो। तस्सेव पोग्गलपमाण-णिरवणं पएसबंधो तह त्ति, जहा 'कम्म पगडि संगहणिए भणियं तहा भणामि। किंचि समासं पवक्खामि त्ति। एएसिं पगइ-ठिइ अणु भाग-पएसाण किंचि किंचि संखेवेणं भणामित्ति भणियं भवइ ॥३॥

उसी मोदक की काल नियमन रूप अविनाश रूप से वह स्थिति है। उसी की स्निग्ध मधुरादिक एकगुण, दो गुण आदि (अनु) भाग चिंतन अनुभाग है। उसके ही समियादिक द्रव्यों का काल परिमाण चिंतन स्थिति बंध है। उसके ही सर्व देश उप घातिक अघाति एक, दो, तीन, चार स्थान शुभ अशुभ, तीव्र मंद आदि चिंतन अनुभाग हैं। उसके ही पुद्गल प्रमाण संख्या का निरूपण प्रदेशबंध हैं। वैसे जाने इति।

जैसे कर्मप्रकृति संग्रहणी में कहा हैं वैसें कहता हूं कुछ अंश संक्षिप्त से कहता हूं इति। इन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग प्रदेशों का कुछ कुछ संक्षेप रूप से कहता हूं ऐसा (उक्त दो सूत्रों का) तात्पर्य है।

चतुर्थ सूत्र उत्थानिका

वक्खाणेयव्वा अत्था उवदिट्ठा। इयाणिं तेसिं विन्नासपओयणं भन्नति 'उवओगो जीवस्स लक्खणं' तस्सिद्धौ शेष सिद्धिरिति। तेण उवओगो पढमं वुच्चइ, तारिस-लक्खणो जीवो मणोवाक्कायजुत्तो चिट्ठइत्ति। तयणंतरं जोगो। जोगोदयो जीवस्स कम्मबंध-पच्चयत्ति काउं, तदनंतरं सामन्न पच्चओ।

सामन्नं विसेसे अवचिट्ठइ त्ति। तदणंतरं विसेस पच्चओ तेहिं पच्चएहिं जीवस्स कम्मबंधो हवइ त्ति तदनंतरं बंधो, बद्धस्स कम्मणो अणुभवणं, ण अबद्धस्स, इति तदनंतरं उदओ। उदए सति उदीरणा भवइ, णो अणुदिए उईरणत्ति; तदनंतरं उदीरणा। एएसिं तिण्हं पुढो सिद्धाणं समवायचिंतणं त्ति, तदणंतरं संजोगो।

उपदिष्ट अर्थो का व्याख्यान करना चाहिए, अब उनके विन्यास के प्रयोजन को कहते हैं। 'उपयोग जीव का लक्षण है' उपयोगो लक्षणं ऐसा गृद्धपिच्छाचार्य का भी वचन है। उस जीव के सिद्ध हो जाने पर शेष की सिद्धि होती है। इसलिए उपयोग का प्रथम व्याख्यान करते हैं। उस प्रकार के लक्षण वाला जीव मन वचन और काययुक्त चेष्टा करता है। उसके पश्चात् योग कहा है। योग आदि जीव के कर्मबंध के प्रत्यय हैं अतः उसके सामान्य प्रत्यय कहते हैं। 'सामान्य विशेष में रहता है'। "सामान्य गम्या विविधा विशेषा" ऐसा स्वामी समंतभद्र ने युक्त्यनुलशासन में कहा है। अतः

उस सामान्य के पश्चात् विशेष प्रत्यय है। उन प्रत्ययों से जीव के कर्मबंध होता है। उसके पश्चात् बंध है चूंकि बद्ध के ही कर्म का अनुभव होता है, अबद्ध जीव के नहीं। इसलिये बंध के पश्चात् उदय है। उदय के होने पर उदीरणा हो सकती है उदय अभाव में नहीं। अतः उदय के पश्चात् उदीरणा है। इन तीनों के सिद्ध होने पर इनका समवाय चिंतन होता है अतः उसके पश्चात् संयोग है।

सामन्न-भणियस्स बंधस्स पुणो भेद-दर्शनार्थं बहुविसयत्ताओ तदधीन त्वाच्च शेष प्रपञ्चस्येति तदनन्तरं बंध-विहाण-चिंतणं ति। एतं क्रम-न्यासे प्रयोजनम् पुव्वं जीवट्ठाणे सुत्ति वुत्तं उवदिट्ठ कमेणेव जीवट्ठाणिइं सत्थं भण्णइ—

चौथा-सूत्र

ऐगिंदिएसुचत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चे व
पंचिंदिएसु वि तहा चत्तारि हवंति ठाणाणि ॥४॥

व्याख्या—एगिंदिएसु जीवट्ठाणंत्ति किं भणियं भवइ? भण्णइ, जीवाणं ठ्ठाणं जीवट्ठाणं, सव्वे संसारत्था जीवा एएसु चोद्दससु जीवट्ठाणेसु वट्टंति, तव्वाहिरा णत्थित्ति काउं जीवट्ठाणं 'एगिंदिएसु चत्तारि होंति त्ति।

सामान्य रूप से कहे गये बंध के पुनः भेद को दिखलाने के लिए बहु विषय वाला होने से और शेष विस्तार उसके अधीन होने से उसके पश्चात् बंध विधान चिंतन है। यह क्रम न्यास में प्रयोजन है। पहले 'जीव स्थानों' ऐसा कहा है, बतलाये गये क्रम के अनुसार जीव स्थान के निर्देश के लिए कहते है—

एकेन्द्रिय के चार जीवस्थान होते हैं विकलेंद्रिय के छह ही हैं। पंचे-न्द्रियों में भी चार होते हैं ॥४॥

'एकेन्द्रियों में जीव स्थान' इसका क्या तात्पर्य है कहते हैं। जीवों का स्थान जीव स्थान है सम्पूर्ण संसारस्थ जीव इन चौदह जीवस्थानों में वर्तते हैं। उसके बाह्य नहीं हैं कि :—एकेन्द्रियों के चार जीवस्थान या जीवसमास स्थान होते हैं।

एगिंदिएसु चत्तारि जीवट्ठाणाइं। तं जहा एगिंदिया दुविहा बायरा सुहुमा य। बायरा दुविहा-पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। सुहुमा दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। एगिंदिया णाम फासिंदिया वरणीयस्स कम्मुणो खवोवसमे वट्टमाणा, एक्कविन्नाण संजुत्ता सेसिंदिय-सव्वारणोदय-सहिया जीवा, सुत्तमत्तादि

मनुष्यवत्। ते दुविहा-बायराय। बायरणाम कम्मोदयाओ बायरा सुहुमा णाम-कम्मोदयाओ सुहुमा। ण चक्खुग्गहणं पइ बायरत्तं सुहुमत्तं वा किंतु णाम कम्माभिणिव्वत्तं जीवपरिणामं पइ जहा परमाणु-रूवं, ण हि परमाणुस्स चक्खुरिंदिय गेज्झमिति रूव-परिणामो किंतु स्वाभाविको रूवपरिणामो, एवं बायर-सुहुम-परिणामो णाम कम्मोदयाभिणिवत्तो।

एकेन्द्रिय के चार जीव समास हैं। वे इस प्रकार है। एकेन्द्रिय दो प्रकार के हैं। बादर और सूक्ष्म। बादर दो प्रकार के हैं। पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म दो प्रकार के हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। एकेन्द्रिय नाम उनका है जो स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम में वर्तमान हैं एक विज्ञान से संयुक्त है। शेषेन्द्रिय के सर्वावरण के उदय सहित जीव सुप्तमत्तादि मनुष्य की भांति हैं। वे दो प्रकार के हैं बादर और सूक्ष्म। बादर नाम कर्म के उदय से बादर। सूक्ष्म नाम से कर्म के उदय से सूक्ष्म। चक्षु के विषय की अपेक्षा बादर या सूक्ष्मत्व नहीं है किंतु नाम कर्म से अभिनिवृत्त रचे गये जीव परिणाम की अपेक्षा है। जैसे परमाणु का रूप। परमाणु का रूप परिणाम चक्षु इन्द्रिय गोचर नहीं है किंतु रूप परिणाम स्वाभाविक है इस प्रकार बादर और सूक्ष्म परिणाम नाम कर्म के उदय से अभिनिवृत्त है। रचा गया है।

अहवा जीव-विवागं किंचि कम्म-सरीरे वि अभिवंजयति बायर-सुहुमत्तं, जहा-मोहणीय-कम्मपगई कोहो जीव-विवागित्ते वि सति सरीरे अभिवत्ति जणयइ, कोहोदए जीवो तप्पज्जाय-परिणओ होइ, सरीरमवि तिवलियणिडालं पसिन्नमुहं भिउडीमभिवंजयइ। ते एक्केक्का दुविहा, पज्जत्तगा अपज्जत्तगय पज्जत्तग अपज्जत्तगत्तं च णाम-कम्माभिणिव्वत्तं।

"आहारसरीरिंदिय उस्सासवओ मणोभिणिव्वत्ती।
होइ जओ दलिइयाओ करणं पइ सा पज्जत्ती" ॥१॥

पज्जत्ती णाम सत्तिविसेसो। सो य दलिओवचयाओ उप्पज्जइ। आहारियस्स दव्वस्स खलरसपरिणाम सत्ती आहारपज्जत्ती। सत्त-धातु-तया-रसस्स परिणामण सत्ती सरीर पज्जत्ती।

अथवा जीव के विपाक को किंचित् कर्म शरीर में भी बादर और सूक्ष्मत्व अभिव्यक्त करता है जैसे मोहनीय कर्म प्रकृति क्रोध जीव विपाकी है तो भी शरीर में अभिव्यक्ति को उत्पन्न करती है। क्रोध के उदय से जीव उस पर्याय से परिणत होता है। शरीर को भी त्रिवलित ललाट खिन्नमुख और

भृकुटि को अभिव्यक्त करता है। वे एक एक प्रत्येक पर्याप्त और अपर्याप्त हैं। पर्याप्त और अपर्याप्तपन नाम कर्म से रचा गया होता है। "जिसके दलित उदय से आहार शरीर इन्द्रिय उच्छ्वास और मन की रचना पूर्ण होती है करण की अपेक्षा वह भी पर्याप्ति है" ॥१॥ पर्याप्ति नाम शक्ति विशेष है। और वह दलित उपचय से उत्पन्न होती है। खाये हुए द्रव्य के खल रस रूप परिणमन कराने की शक्ति आहार पर्याप्ति है। सप्त धातु रूप से रस के परिणमन कराने की शक्ति शरीर पर्याप्ति है।

इन्दिय पज्जत्ती' पञ्चण्हमिन्दियाणं जोग्गे पोग्गले विचिणिय तब्भावणयणसत्ति अत्थाव बोहसत्ती य इन्दियपज्जतीं बाहिरे आणापाण जोग्गे पोग्गले घेत्तूण आणापाणाए परिणामित्ता ऊसासनीसासत्ताए निस्सरण सत्ती आणापाण-पज्जत्ती। वइजोगे पोग्गले घेत्तूण ससत्ताए परिणामित्ता वइ जोगत्ताए णिस्सरण-सत्ती भासापज्जत्ती। मणो जोगे पोग्गले घेत्तूण मणत्ताए परिणामित्ता मणजोगत्ताए णिस्सरणसत्ती मणपज्जत्ती। एयाओ पज्जत्तीओ पज्जत्त-णाम-कम्मोदएण णिव्वत्तिजन्ति तं जेसिं अत्थि ते पज्जत्तगा। एयाओ चेव पज्जर्ताओ अपज्जत-णाम-कम्मो दयण विञ्वितिजन्ति। तं जेसिं अत्थि ते अपज्जतगा।

पांचों इन्द्रियों के योग्य पुद्गल को संचय करके उस रूप करने की शक्ति और अर्थावबोध निमित्तक शक्ति इन्द्रिय पर्याप्ति है। बाह्य श्वासो-श्वास आन-प्राण के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके श्वासोच्छ्वास रूप से परिणत करके उश्वास निश्वास रूप से निकलने के लिए निमित्त शक्ति आन-प्राण पर्याप्ति है। वचन योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके स्वसत्ता रूप से परिणमन कराके वचन योग्य रूप से निकलने में निमित भाषा पर्याप्ति है। मन के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके द्रव्य मन रूप से परिणमन करा के मन के योग्य रूप से निस्सरण जानने में निमित्तभूत शक्ति मनपर्याप्ति है। ये पर्याप्तियां पर्याप्त नामकर्म के उदय से बनती हैं, वह पर्याप्त नाम कर्म जिनके उदय है वे पर्याप्त हैं। ये ही पर्याप्तियां अपर्याप्त नाम कर्म के उदय द्वारा अपूर्ण रची जाती हैं। वह अपर्याप्त नाम कर्म का उदय जिनके हैं वे अपर्याप्त हैं।

तत्थ मूलिल्लाओ चत्तारि पज्जत्तीओ अपज्जित्तिओ य एगिन्दियाणं भवंति। वाया सहिया चेव विगलिन्दियाणं, असन्निपञ्चेन्दियाणं च पञ्च हवन्ति। ता चेव मणो सहियाओ छ पज्जत्तिओ छ अपज्जत्तिओ य सन्नि पञ्चिन्दियाणं भवन्ति। विगलिन्दिएसु छच्चेव" त्ति, विगलाइं असंपुन्नाइं

इन्दियाइं जेसिं ते विगलिन्दियाइ, बे इन्दियाइ जाव चउरिन्दिया। फासिन्दिय-जिब्भिन्दियावरणाणं ख ओवसमें वट्टमाणा, दुविन्नाणसंजुत्ता, सेसिन्दिया-वरण-सहिया जीवा बेन्दिया, ते दुविया पजत्तगा अपजत्तगाय फासिन्दिय-जिब्भिन्दिय घाणिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टमाणा, तविन्नाणसंजुत्ता सेसिन्दिय-सव्व-विन्नाणावरण सहिया जीवा तेन्दिया; ते दुविहा, पजत्तगा अपजत्तगाय।

उसमें मूल चार पर्याप्तियां है। और अपर्याप्तियां भी एकेन्द्रियों के होती हैं। वाचा सहित विकलेन्द्रियों के और असैनी पंचेन्द्रियों के पांच होती हैं। वे ही मन सहित छह पर्याप्तियां भी सैनी पंचेन्द्रियों के होती हैं। विकलेन्द्रियों में छह ही होती हैं। विकल असम्पूर्ण इन्द्रियां जिनके हैं वे विकल इन्द्रिय हैं, बेइन्द्रिय से चौइन्द्रिय तक। स्पर्शेन्द्रिय, जिह्वा इन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम में वर्तमान दो विज्ञानों से युक्त शेषेन्द्रियावरण सहित जीव बेन्द्रिय हैं, वे दो प्रकार के हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। स्पर्शन इन्द्रिय, जिह्वा इन्द्रिय, घ्राण-इन्द्रिया-वरण के क्षयोपशम में वर्तमान उस विज्ञान से संयुक्त शेष इन्द्रिय के विज्ञाना-वरण से सहित जीव ते इन्द्रिय हैं वे दोप्रकार के हैं पर्याप्त और अपर्याप्त।

फासिन्दिय जिब्भिन्दिय–घाणिन्दिय–चक्खिन्दिया वरणाणं खओवसमे वट्टमाणा विणाणा संजुत्ता, सेससव्वविन्नाणावरण सहित जीव चतुरिन्दिया; ते दुविहा पजत्तगा अपजत्तगा य। एवं विगलिन्दिएसुवि छ जीवपट्ठणाणि। 'पञ्चन्दिएसुवि तहा चत्तारि भवन्ति ठाणाणि' त्ति पञ्चन्दिया णाम मणो-विन्नाण सहिया ईहापोहमग्गण गवेसणा ये जेसिं जीवाणं अत्थि ते सन्निया ते दुविहा असन्नी सन्नी य। तत्थ असन्नी णाम मणोविन्नाण रहिया, ईहापोहमग्गण गवेसणा तेसिं णत्थि, ते दुविहा, पजत्तगा अपजत्तगा य। सन्नि पञ्चिन्दिया णाम मनो विण्णाण सहिया ईहापोहमग्गण–गवेसणा य जेसिं जीवणं अत्थि ते सन्निया ते दुविहा पजत्तगा अपजत्तगा य। एवं पञ्चिन्दियेसुवि चत्तारि जीवट्ठाणाणि।४

स्पर्शन् इन्द्रिय, जिह्वा इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय के क्षयोपशम में वर्तमान चार विज्ञान से संयुक्त शेष सब ज्ञानावरण से सहित जीव चौइन्द्रिय हैं। वे दो प्रकार के हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। इस प्रकार विकलेन्द्रियों में भी उसी प्रकार छह जीवस्थान होते हैं। पञ्चेन्द्रियों में भी चार जीवस्थान होते हैं। पञ्चेन्द्रिय (संज्ञा) 'मनोविज्ञान सहित ईहा अपोह मार्गण और गवेषणा जिन जीवों के है वे सैनी हैं। वे दो प्रकार के हैं सैनी और असैनी उनमें असैनी मनोविज्ञान से रहित हैं। ईहा, अपोह, मार्गण और गवेषणा

उनके नहीं है वे दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मनोविज्ञान सहित ईहा अपोह मार्गण और गवेषणा जिन जीवों के है वे सैनी हैं। वे दो प्रकार के हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। ऐसे पञ्चेन्द्रियों में भी चार जीव स्थान हैं।

जीवट्ठाणाणं भेओ लक्खणं च परूविय। इयाणि ते चेव गइमाइएसु मग्गणट्ठाणेसु के कहिं अत्थित्ति। मग्गिज्जन्ति तण्णिरूवणत्थं भण्णइ—

जीव स्थानों का भेद और लक्षण प्ररूपित किया गया। और—अब वे ही गति आदि मार्गणा स्थानों में कौन कहां हैं इस प्रकार खोजी जाती हैं। उसका निरूपण करने के लिए कहते हैं।

पञ्चम गाथा सूत्र

"तिरियगईए चोद्दस, हवन्ति सेसासु जाण दो दोउ।
मग्गणठाणे एवं नेयाणि समास ठाणाणि ॥५॥
गइ इन्दिए य काए, जोए वेए कसाय णाणे य
संजमदंसणलेसा, भवसम्मे सन्नि आहारे ॥

व्याख्या— गइ' त्ति। चउव्विहाणगई णिरयगई तिरियगई, मणुयगई, देवगई य। तत्थ तिरियगईए चोद्दसवि जीवट्ठाणाणि भवन्ति। कम्हा ? जेण एगिन्दिया दयो जीव पञ्चिन्दिया सव्वे तिरिय त्ति काउं।

तिर्यञ्च गति में चौदह जीव समास होते हैं शेष गतियों में दो दो जीव समास होते हैं मार्गणा स्थानों में इसी प्रकार जीव समास स्थानों को लगा लेना चाहिये या ले जाना चाहिए या निश्चय करना चाहिये।

जीव इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व संज्ञी और आहार' ये चौदह मार्गणाएँ हैं। गति चार हैं नरक गति तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति। उनमें से तिर्यञ्चगति में चौदह भी जीव स्थान होते हैं—किस कारण ? क्योंकि एकेन्द्रियादि पञ्चेन्द्रिय तक सब तिर्यञ्च हैं इसलिए।

'सेसासु जाण दो दो उ' णिरयगइमणुयगइ-देवगईसु दो दो जीव ट्ठाणाणि, सन्निपञ्चिन्दिय पज्जत्तगा अपज्जत्तगा या देव-णेरइएसु करण पज्जत्तीए अपज्जत्तगो न लद्धीए, लद्धीए पज्जत्तगा एव, जो करण-पज्जत्तीए अपज्जत्तगो सो अपज्जत्तगहणेणं गहिओ, लद्धि अपज्जत्तगो तेसु णत्थि। मणुस्सेसु दोवि।

'मग्गणठाणे एवं नेयाणि समास ठाणाणि' त्ति; मग्गणट्ठाणेसु एएणेव विहिणा समासट्ठाणाणि-जीवट्ठाणाणि णायव्वाणि । गइ इन्दिए य कहियं भवइ । जोग णाण दंसणाणि अगहियाणि ।

सेसेसु भणइ-'काये त्ति, काओ छव्विहो-पुढविकाइ याइ, तत्थ पुढवि आइसु वणस्सइ पज्जन्तेसु चत्तारि जीवट्ठाणाणि भवन्ति एगिन्दियाणं ।

शेष नरकगति मनुष्यगति और देवगति में दो दो जीव स्थान होते हैं । सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त । देव और नारकियों में करणपर्याप्ति में अपर्याप्त होते हैं लब्धि में नहीं । क्योंकि लब्धि में पर्याप्त ही होते हैं जो करण पर्याप्ति में अपर्याप्त है वह (निवृत्ति अपर्याप्तक) अपर्याप्त ग्रहण से लिया है । क्योंकि उनमें लब्धि अपर्याप्तक नहीं है । मनुष्यों में दोनों भी होते हैं । मार्गणा स्थानों में इस प्रकार समास स्थान को ले जाना चाहिए' । मार्गणा स्थानों में इसी प्रकार से समास स्थान और जीव-स्थान जानने चाहिए । गति और इन्द्रिय में कहा हुआ है । योग, ज्ञान और दर्शन अग्रहीत हैं । शेषों में कहते हैं । काय छह प्रकार का है—पृथ्वीकाइक उसमें से पृथ्वी आदिक वनस्पति पर्यन्तों में चार जीव स्थान एकेन्द्रियों के होते हैं ।

तसकाइगेसु दस जीवट्ठाणाणि भवन्ति, बेन्दियपज्जत्तगाइ जीव सन्नि-पज्जत्तगो त्ति । 'वेए' त्ति वेओ तिविहो- इत्थिवेओ, पुरिसवेओ णपुंसगवेओ य । णपुंसगवेए चोद्दसवि जीवट्ठाणाणि भवन्ति । इत्थि पुरिस वेएसु चत्तारि जीवट्ठाणाणि भवन्ति, असन्नि सन्नि पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य, करण पज्जत्तीए अपज्जत्तगा गहिया, जओ लद्धिपज्जत्तीए अपज्जत्तगा सव्वे णपुंसगा । अवेयगेसु सन्नि-पज्जत्तवो होज्ज। बायरसंपराइ जाव अजोगि केवलि त्ति । 'कसाय' त्ति कसाया चउव्विहा, कोहाइचउसुवि कसाएसु चोद्दस जीवट्ठाणाणि भवन्ति । अकसाएसुवि सन्निपज्जत्तगो होज्जा ।

त्रस काइकों में दस जीव स्थान होते हैं । वे इन्द्रिय पर्याप्त से लेकर सैनी पर्याप्त तक वेद तीन प्रकार का है स्त्री वेद, पुरुष वेद, और नपुंसक वेद । नपुंसक वेद में चौदह भी जीवस्थान होते हैं । स्त्री और पुरुष वेदों में चार जीवस्थान होते हैं । असैनी सैनी, पर्याप्त और अपर्याप्त करण पर्याप्ति में अपर्याप्त (निवृत्ति अपर्याप्तक) कों का ग्रहण किया है क्योंकि लब्धि अपर्याप्त ये अपर्याप्त सब के सब नपुंसक हैं । वेद रहितों में सैनी पर्याप्तक बादर सांपराय से अयोग केवली तक होता है । कषाय चार प्रकार के हैं । क्रोधादिक चारों कषायों में चौदह जीवस्थान होते हैं । कषाय रहितों में भी सैनी पर्याप्तक होता है ।

'संजमे'। त्ति संजया पञ्चविहा सामाइगाइ संजया, संजया संजया य असंजया य। पञ्चसु संजएसु संजयासंजएसु य एक्केक्कं जीवट्ठाणं सन्निपञ्चिन्दिय पज्जत्तगो लब्भइ असञ्जएसु चोद्दस जीवट्ठाणाणि लब्भन्ति। 'लेस' त्ति, लेसा छव्विहा किण्हाइ। किण्ह-नील-काओलेसासु चोद्दस जीवट्ठाणाणि लब्भन्ति, तेउ-पम्ह-सुक्कलेस्सासु सन्निपञ्चिन्दिय पज्जत्तगो अपज्जत्तगो य लब्भइ करण अपज्जत्तगो गहिओ, लद्धि अपज्जत्तगस्स हेट्ठिल्ला तिन्नि लेसा भवन्ति।

संयम पांच प्रकार के हैं। सामायिकादि पांच सयम हैं और सयतासंयत और असंयत भी हैं। पांच संयमों में और सजमासंजमों मे एक एक जीवस्थान सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त प्राप्त होता है असंयमों में चौदह जीवस्थान लब्ध होते हैं।

लेश्या छह प्रकार की है कृष्ण आदि। कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओं में चौदह जीवस्थान प्राप्त होते हैं। तेज पद्म और शुल्क लेश्याओं में सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त प्राप्त होता है। करण अपर्याप्त अर्थात् निवृत्ति अपर्याप्तक का ग्रहण किया है क्योंकि जो लब्धि अपर्याप्तक है उसके नीचे की तीन अशुभ भाव लेश्याएँ होती है।

'भव्व'त्ति भव्वा भव्वाण वि दोण्ह वि चोद्दस वि। 'समत्ते'त्ति, सम्मदिट्ठी खइग-वेयग-उवसम सासण-सम्मामिच्छदिट्ठी य, तत्थ वेयग-उवसम-खइयसम्मद्दिट्ठीसु दो दो जीवट्ठाणाणि सन्निपज्जत्त अपज्जत्तगाणि, अपज्जत्तगोत्ति करण अपज्जत्तगो सम्मामिच्छद्दिट्ठी सन्निपज्जत्तगो एव सासण सम्मद्दिट्ठी, बायरएगिन्दिय, वेन्दिय तेइन्दिय-चउरिन्दिय-असन्निपञ्चेन्दिय लद्धिए पज्जत्तगेसु करण अपज्जत्तगेसु सन्निपज्जत्तगेसु य, मिच्छदिट्ठिस्स चोद्दस वि। 'सन्नि'त्ति सन्नि असन्निम्य-सन्निपञ्चिन्दिए मोत्तूण सेसा बारसवि असन्निणो, सन्निपञ्चेन्दिएसु दो जीवट्ठाणाणि। 'आहारगे' त्ति आहारगा अणाहारगा य, तत्थ आहारगेसु चोद्दसवि अणाहारगेसु सत्तावि अपज्जत्तगा सन्निपज्जत्तगो य लब्भइ, केवलि समुग्घाए ति-चउत्थ-पञ्चसमएसु अणाहारगो भवइ—

भव्य और अभव्य दोनों के भी चौदह जीवसमास होते हैं। सम्यक्त्व में क्षायिक, वेदक, उपशम, सासादन और सम्यक्मिथ्यादृष्टि। इन में से वेदक उपशम, क्षायिक सम्यक्दृष्टियों में दो दो जीव स्थान है सैनी, पर्याप्त और अपर्याप्त हैं। अपर्याप्तक करण-अपर्याप्तक (निवृत्ति अपर्याप्तक) है। सम्यक्मिथ्यादृष्टि सैनी पर्याप्तक ही होता है। सासादन सम्यग्दृष्टि, बादर एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनी पञ्चेन्द्रिय लब्धि में पर्याप्तकों में और करण अपर्याप्तको मे सैनी पर्याप्तकों में, मिथ्यादृष्टि के चौदह भी होते है। सैनी असैनी मे से सैनी पञ्चेन्द्रिय

को छोड़ कर शेष बारह भी असैनी हैं। सैनी पञ्चेन्द्रियों में दो जीवस्थान हैं। आहार कमार्गणा में आहारक और अनाहारक हैं उन में आहारकों में चौदह जीव-स्थान भी है। अनाहारक कों में सात भी अपर्याप्तक और सैनी पर्याप्तक प्राप्त करता है। केवली समुद्घात में तीसरे चौथे और पांचवें समयों में अनाहारक होता है।

छठा–सूत्र

जीवट्ठाणाणि मग्गणट्ठाणेसु मग्गियाणि, इयाणि तेसु उवग्रोगणिरूवणत्थं भन्नइ–
एक्कारसेसु तिय तिय, दोसु चउक्कं, च बारसेगम्मि जीवसमासे एव, उवग्रोगविही मुणेयव्वा–६

व्याख्या—'एक्कारसेसु तिय' त्ति। एक्कारसेसु जीवट्ठाणेसु, एगिन्द्रया चत्तारि, बेइन्दिय तेइन्दिय पज्जत्तगा अपज्जत्तगा, चउरिन्द्रिय असन्नि सन्नि अपज्जत्तगाय एए एक्कारस, एएसु एक्कारसु पत्तेय पत्तेय तिन्नि तिन्नि उवग्रोगा, भवन्ति तं जहा मइअन्नाणं सुयअन्नाणं अचक्खु दसणं त्ति। 'दोसुचउक्कं' त्ति, दोसु जीवट्ठाणेसु चउरिन्दिय पज्जत्तगेसु असन्निपज्जत्तगेसु य पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि उवग्रोगा भवन्ति। तं जहा पुव्वुत्ताणि तिन्नि चक्खुदंसणं च तेपिक्खन्ति त्ति काउं, 'बारसेगम्मि' त्ति सन्नि-पज्जत्तगम्मि पुव्वुत्ता बारस वि उवग्रोगा भवन्ति।

जीवस्थान मार्गणा स्थानों मार्गित किये अब उन में उपयोग का निरूपण करने के लिए कहते हैं :—ग्यारह जीवस्थानों में तीन तीन। दो जीवस्थानों में चार और एक जीवस्थान में चार इस प्रकार जीव समास में उपयोग विधि जानना चाहिए ।।६।। 'ग्यारह जीवस्थानों में', एकेन्द्रिय चार, बे ते इन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तक चौइन्द्रिय, असैनी और सैनी अपर्याप्त ये ग्यारह जीव स्थान है। इन ग्यारह में से प्रत्येक के तीन उपयोग होते हैं वे इस प्रकार है मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, और अचक्षुदर्शन। दो जीवस्थानों में चौइन्द्रिय पर्याप्तकों में और असैनी पर्याप्तकों में प्रत्येक में चार उपयोग होते हैं। वे इस प्रकार हैं :— पूर्वोक्त तीन और चक्षुदर्शन चूंकि वे देखते है इसलिए सैनी अपर्याप्त में पूर्वोक्त बाहर उपयोग भी होते हैं।

केवलणाणीण सन्नित्तं कहं? इति चेद् उच्यते–दव्वमण सहितत्वाद् सन्नि त्ति वुच्चइ। केवलज्ञानी के सैनिपना कैसे है? यदि ऐसा कहो तो कहा जाते है कि :—द्रव्य मन सहित होने से सैनी कहलाता हैं।

एत्थ अपज्जत्तग गहणेण लद्धि अपज्जत्तगो गहिओ, करण अपज्जत्तो पज्जत्तग गहणेणं गहिओ। जीव समासे एवं उवओगविही मुणेयव्वे त्ति कण्ठ्यम् ॥६॥

प्रकृत में अपर्याप्त के ग्रहण द्वारा लब्धि अपर्याप्त का ग्रहण किया है करण अपर्याप्त (निवृत्त अपर्याप्त का) का पर्याप्त के ग्रहण से ग्रहण किया गया है। जीवसमास में इस प्रकार से उपयोग विधि को जान लेना चाहिए कण्ठ करना चाहिए।

नोट :— भाव मन की अपेक्षा तेरहवें चौदहवें में सैनी असैनीपना नहीं है। शुद्ध मन का अर्थ शुद्ध विज्ञान या केवलज्ञान होता है वह निरावरण ज्ञान केवली के है। 'शुभ मन' साधु के होता है और शोभन केवलज्ञान या शोभन विज्ञान यह भी शुभ मन का अर्थ होता है जैसा प्रकरण हो वैसा जानना चाहिये। (देखो जिन शतक में 'सुमनो' का अर्थ स्वामी समंतभद्र कृत स्तुतिविद्या वसुनन्दी कृत संस्कृत टीका)—

उव ओगा जीव समासेसु भणिया। उपयोग जीव समासों में कहे गये॥
इयाणि जोगा भन्नंति। अब योगों को कहते हैं॥

सातवाँ—सूत्र

णवसु चउक्के एक्के जोगा एक्को य दोण्णि पन्नरस।
तब्भवगएसु एए भवन्तरगएसु ॥७॥

नौ जीव समासों में सामान्य से एकर काय योग होते हैं। चार जीवस्थानों में दो दो योग प्रत्येक के होते हैं। एक जीव समास में पंदरह योग भी होते हैं ये योग तद्भव-शरीर वालों के होते हैं भवान्तरगत विग्रह गति में एक कार्मण काय योग होता है।

व्याख्या:—णवसु चउक्के एक्के जोगा एक्को य दोण्णि पन्नरस 'त्ति। णवसु चउसु एक्कम्मि जीवट्ठाणेसु जहांसंखेण जोगा एक्को दोण्णि पन्नरस त्ति, एगिन्दिया चत्तारि—शेष अपज्जत्तगा य पञ्च एएसु णवसु एक्केक्को जोगो।

सामन्नेणं एक्को कायजोगो, विसेसेणं सुहुम-बायर-पज्जत्तगाणं ओरालिय कायजोगो, तेसिं चेव करण-अपज्जत्तगाणं ओरालिय मिस्स कायजोगो, बायरए-

गिन्दिय पज्जत्तगस्स वेउव्विय कायजोगो वेउव्विय मिस्सकायजोगो वाउं य पडुच्च। लद्धिए करणेण य अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं ओरालियमिस्स कायजोगो चेव। चउसु जीवट्ठाणेसु बेइन्दिय-ते इन्दिय-चउरिन्दि य असन्नि पज्जत्तगेसु दो दो जोगा पत्तेयं भवन्ति, ओरालियकायजोगो असच्चमोसवइजोगो य करण-पज्जत्तगा गहिया। एक्कम्मि सन्निपज्जत्तगम्मि पन्नरसविय्रोगो भवन्ति, मण जोगो ४ वइजोगा ४ ओरालिय वेउव्वियआहारकक।यजोगा आहारक मिस्सकायजोगो य वेउव्विय आहारगे विउव्वयन्ते आहारयन्ते च पडुच्च, ते पज्जत्तगा चेव।

'तब्भवगएसु एए' त्ति तम्मि भवे गया तब्भवगया अप्पप्पणो सरीरे वट्टन्ताणं एए भणिया। 'भवन्तरगएसु कायजोगो' त्ति भवादन्यो भवो भवान्तंर, तम्मिगया भवांतर गया विग्रहगतानामित्यर्थः, सव्वेसिं भवान्तरगताणं कम्मइ काय जोगो चेव ।।७।।

नौ, चार और एक जीव समास में क्रमशः एक दो और पंदरह योग होते हैं। एकेन्द्रिय चार और शेष पांच अपर्याप्तक इन नौ जीव समासों में एक एक योग होता है अर्थात् सामान्यतया एक काययोग होता है विशेष अपेक्षा से सूक्ष्म और बादर पर्याप्तकों के औदारिक काययोग होता है। और उन्हीं के निवृत्ति अपर्याप्तकों के औदारिक मिश्र काययोग होता है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त के वैक्रियक काय योग और वैक्रियक मिश्रकाययोग वायु कायिक जीवों की अपेक्षा से होता है। और लब्धि अपर्याप्तक और निवृत्ति अपर्याप्त में सबके औदारिक मिश्रकाययोग ही एकेन्द्रियों के होता है चार जीव स्थानों में बेइन्द्रिय, ते इन्द्रिय चौइन्द्रिय और असैनी पञ्चेन्द्रियो में प्रत्येक में दो दो योग होते है। औदारिक काययोग और असत्य मोष वचनयोग करण पर्याप्तक (की अपेक्षा) ग्रहण किये है।

एक सैनी पर्याप्त में पदरह भी योग होते है। मन के चार वचन के चार औदारिक-वैक्रियिक-आहारकाय योग प्रसिद्ध है औदारिक मिश्र काययोग और कार्मण काययोग संयोग केवली की अपेक्षा समुद्घात काल मे होते हैं। वैक्रियक मिश्र काययोग, आहारक मिश्र काययोग और वैक्रियक आहारक क्रिया करने और आहार करने की अपेक्षा वे पर्याप्त ही हैं।

उस भव में गये तद्भवगत अपने शरीर में वर्तमान रहने वालों की अपेक्षा ये कहे हैं। भव से अन्य भवान्तर है उस मे प्राप्त हुए विग्रहगति वालों का ग्रहण है ऐसा अर्थ या तात्पर्य है। संपूर्ण विग्रहगति वालों के कार्मण काययोग ही होता है।

आठवाँ–सूत्र

उवओगा जोगविही जीवसमासेसु वन्निया एव।
एत्तो गुणेहिं सह संगयाणि ठाणाणि मे सुणह ।।

व्याख्या—'उवयोग' त्ति, गाहाए पुव्वद्धं कण्ठ्यम्। जीवट्ठाणेसु उवओगा जोगा य भणिया। 'ऐत्तो गुणेहिं सह परिसगयाणि ठाणाणि मे सुणह' त्ति। एत्तो गुण—जुत्ताणि ठाणाणि सुणह भणामि त्ति भणिअं भवइ ।।८।।

उपयोग विधि और योग विधि जीव समासों में इस प्रकार वर्णित की गई। इसके आगे इन गुणस्थानों को सुन ! जीव समासों में उपयोग और योग बतलाये गये इसके आगे गुण से युक्त स्थानों को कहता हूं सुनो ऐसा तात्पर्य है।

इयाणि उवदिट्ठ कमागयाण गुण ट्ठाणाणं णिद्देसं करेइ—अब उद्दिष्ट क्रमागत गुणस्थानों का निर्देश करते हैं :—

नौवाँ–गाथा–सूत्र

मिच्छद्दिट्ठी-सासण–मिस्से अजए य देसविरए य।
नव संजएसु एवं चउदस गुणणामठाणाणि ।।

मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र, असयत, देशविरत और नौ संयतों में इस प्रकार चौदह गुणस्थान नाम हैं।

व्याख्या—'मिच्छद्दिट्ठि' त्ति, मिच्छादिट्ठी 'सासण' त्ति सासणसम्मद्दिट्ठी 'मिस्स' त्ति सम्मामिच्छद्दिट्ठी' 'अजते' त्ति असंजय सम्मद्दिट्ठी, 'देसविरए' त्ति, संजमासंजओ 'णव संजएसु' त्ति सजएसु णव ठाणाणि। तं॰ पमत्तसजओ अपमत्त सजओ, अपुव्वकरणप विट्ठेसु उवसामगा खवगय, एवं अणियट्ठि बायर साम्पराइय पविट्ठेसु उवसामगा खवगा य उवसन्तकसाय वीतरागच्छउमत्थो, खीणकसाय वीतरागच्छउमत्थो सजोगकेवलि अयोगकेवलि चेति ।।

'मिच्छद्दिट्ठि' का अर्थ मिथ्यादृष्टि है 'सासण' यह सासादन सम्यग्दृष्टि को बतलाने के लिए है 'मिस्स' अर्थात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि, 'अजए' या 'अयते अर्थात् असंयतसम्यग्दृष्टि'। 'देसविरए' अर्थात् संयमासंयम। 'णवसंएसु' अर्थात् संयतों में नौगुणस्थान हैं। त जहां—वे इस प्रकार हैं—

प्रमत्त संयत, अप्रमत्त सयत, अपूर्वकरण प्रविष्टों में उपशामक और क्षपक। इस प्रकार अनिवृत्ति बादर साम्पराइकों में प्रविष्ट उपशामक और क्षपक होते हैं। सूक्ष्म सांपराय में प्रविष्ट उपशामक और क्षपक होते हैं। उपशांतकषाय-वीतराग-छद्मस्थ, क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ, सयोग केवली और अयोग केवली।

तत्थ मिच्छद्दिट्ठि त्ति—मिच्छा अलिय अतथ्य दृष्टिर्दर्शनं मिच्छद्दिट्ठी जेसि जीवाण ते मिच्छद्दिट्ठि, अण्णहाट्ठियमत्थं अण्णहा विचिन्तेति मिच्छत्तस्स उदएणं। यथा—मद्यपीतहृत्पूरक भक्षितपित्तोदय व्याकुलीकृत पुरुष ज्ञानवत्; मिच्छत्त यथार्थवस्थित-रुचि-प्रतिघात कारण। उक्तं च—

मिच्छत्ततिमिरपच्छाइयदिट्ठीरागदोस संजुत्ता।
धम्म जिणपन्नत्तं भव्वाविणरा ण रोचेन्ति ॥१॥
मिच्छद्दिट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहइ।
सद्दहइ असब्भावं उवइट्ठं या अणुवइट्ठं ॥२॥
पयक्खरं व एक्कं पि जो ण रोचेइ सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोएन्तोविदु मिच्छद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥३॥
सुत्तं गणहर कहियं तहेव पत्तेय बुद्धकहियं च।
सुयकेवलिणा रइयं अभिन्न दस पुव्विणा कहिय ॥४॥

अथवा

तं मिच्छत्तं जमसद्दणं तच्चाण जाण अत्थाणं।
संसइयमाभग्गहियं अणभिग्गहियं च तं तिविहं ॥५॥

उन चौदह में 'मिच्छद्दिट्ठी' अर्थात् मिथ्या, अलीक अतथ्य, दृष्टिदर्शन या श्रद्धान' यह मिथ्या श्रद्धान जिन जीवों के है वह मिथ्यादृष्टी है। अन्यथा स्थित अर्थ को—पदार्थ को अन्यथा चिन्तन करता है क्योंकि वह मिथ्यात्व के उदय से युक्त है। जैसे मद्य पिया हुआ हत्पूरक (धतूर) खाकर पित्त के उदय से व्याकुल किये गये पुरुष। वैसे मिथ्यात्व यथार्थ अवस्थित रुचि श्रद्धा के प्रतिघात का कारण होता है कहा भी है।

मिथ्यात्व तिमिर से आच्छादित दृष्टि राग द्वेष से संयुक्त भव्य भी मनुष्य जिन प्रणीत धर्म को नहीं चाहते श्रद्धा नहीं करते। मिथ्यादृष्टि जीव उपदिष्ट प्रवचन पर श्रद्धान नहीं करता, उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भाव पर श्रद्धान करता है। सूत्र में निर्दिष्ट एक भी पद या अक्षर पर विश्वास नहीं करता है तो शेष पर श्रद्धा करते हुए भी मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। गणधर कथित सूत्र तथा प्रत्येक बुद्ध कथित श्रुतकेवली कथित और अभिन्न दशपूर्वी कथित सूत्र है। अथवा—

जो तत्व और अर्थ का अश्रद्धान है वह मिथ्यात्व है वह संशयित अभिग्रहीत और अनभिग्रहीत के भेद से त्रिविध है।

'सासण सम्मद्दिट्ठी', त्ति—आसाइज्जइ अरोण सम्मत्तमिति आसायणं, सम्मादिट्ठी समदिट्ठी, सह आसायणेण वट्टन्त इति सासायणा ; सासायण सम्मदिट्ठी जेसिं ते भवन्ति सासायण सम्मद्दिट्ठी। उवसम सम्मत्त द्धाए वट्टमाणो जीवो अणंताणुबन्धि उदएण सासणभावं गच्छइ। जहा कोइ। पुरिसो वमगो अणेगगुण संपन्नं पायसं भोत्तूणं धातु वैषम्यात् तस्सोवरि व्यलिक चित्तो भवइ, ण ताव छड्डुइ, णियमा छड्डेहि त्ति, एवं सम्मत्ते व्यलिक चित्तो ण ताव छड्डेइ णियमा छड्डेहि त्ति, सोसासणो। उक्तं च—

उवसामगो उ सव्वो णिव्वाघाएण तह णिरासाणो।
उवसन्ते सासाणो णिरसाणो होइ खीणम्मि ॥१॥
एसो सासण-सम्मो सम्मत्तद्धाए वट्टमाणोय।
आसायणाए सहिओ सासण सम्मोत्ति णायव्वो ॥२॥

इसके द्वारा सम्यक्त्व की आसादना होती है इसलिए 'आसादन' कहते हैं। समीचीन दृष्टि को सम्यग्दृष्टि कहते है वह दृष्टि आसादना के साथ रहती है इसलिए 'सासादना' कहलाती है। वह आसादना सहित दृष्टि जिनके होती है वे सासादन सम्यग्दृष्टि हैं। उपशम सम्यक्त्व के काल में वर्तमान जीव अनंतानुबंधी के उदय से सासादन भाव को प्राप्त होता है। जैसे कोई पुरुष दमन करने वाला अने गुण संपन्न दूध को पीकर धातु की विषमता से उस पर अन्यथा-विपरीत चित्त वाला होता है तो क्या वह उस दूध का वमन नहीं करता है अवश्य वह छर्दी करता है। इस प्रकार सम्यक्त्व के विषय में विपरीत चित्त वाला क्या उसमम्यक्त्व का वमन नहीं करता है अवश्य वमन करता है वह सासादन है कहा भी है—उपशम श्रेणी मांडने वाला निर्व्याघात के कारण—अनंतानुबंधी के विसंयोजन के कारण आसादनारहित होता। वैसे ग्याहरवें उपशांत में तथा क्षीण दर्शनमोह में निरासादन प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में वर्तमान और आसादना सहित यह सासादन सम्यग्दृष्टि होता है। ऐसा जानना चाहिए।

सम्मामिच्छद्दिट्ठि त्ति—सम्मं च मिच्छा च सम्ममिच्छाद्दिट्ठी जेसिं जीवाण ते भवन्ति सम्मामिच्छद्दिट्ठी मिस्सद्दिट्ठी विरताविरतवत्। पढमं सम्मत्तं उप्पाएन्तो तिन्नि करणाणि करेत्ता उवसम-सम्मत्तं पडिवन्नो मिच्छत्तदलियं तिपुञ्जी करेइ-सुद्धं मिस्सं अविसुद्धं चेति। जहा मयण-कोद्दवाणिव्वलिया मिस्सा अणिव्वलिया य। निव्वलिय-सरिसं सम्मत्तं, अणिव्वलिय सरिसं मिच्छत्तं मिस्स सरिसं सम्मा मिच्छत्तं सद्दहण णासण-लक्खणं, सुद्धासुद्धा मिस्स कोद्दवोदणभोजि पुरिस-परिणाम-

वत् । सुद्धवेई सम्मदिट्ठी हवइ, जहा सुद्ध कोद्दवोदण भोजिपुरिसो स्वच्छेन्द्रिय-ज्ञानावबोधो भवति । उक्तं च—

समीचीन और मिथ्या ऐसी सम्यक् मिथ्यादृष्टि जिन जीवों के होती है वे सम्यक् मिथ्यादृष्टि विरताविरत की भांति होते है । प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाला तीन करण करके उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ, वह मिथ्यात्व का दलन करके तीन पुञ्ज करता—तीन भाग करता है शुद्ध मिश्र और अशुद्ध । जैसे मदन कोद्रव या कोदु निर्बल मिश्र और अनिर्बल होते हैं । निर्बल के समान सम्यक्त्व है अनिर्बल के समान मिथ्यात्व और मिश्र के समान सम्यग्मिथ्यात्व होता है श्रद्धान के णास करने के लक्षण से युक्त है, शुद्ध और अशुद्ध मिश्र कोद्रव ओदन के खाने वाले पुरुष के तुल्य परिणाम वाला होता है । शुद्ध वेदन करने वाला सम्यग्दृष्टि होता है । जैसे शुद्ध कोद्रव या कोदु के भात को खाने वाले पुरुष के समान प्रसन्न इन्द्रिय ज्ञानावबोध वाला होता है । कहा भी है—

सम्मत्त गुणेण तओ विसोहई कम्ममेस मिच्छत्तं ।
सुज्झन्ति कोद्दवा जह मदणा ते ओसहे णेव ।।१।।
जं सव्वहाभविसुद्धं तं वेवय भवइ कम्म सम्मत्तं ।
मिस्सं अद्धविसुद्धं भवे असुद्धं भवं असुद्धं च मिच्छत्तं ।।२।।
तिव्वाणु भावजोगो भवइ हु मिच्छत्त वेयणिज्जस्स ।
सम्मत्ते अइमन्दो मिस्से मिस्से मिस्साण भावोय ।।३।।
(स) मयणकोद्दव भोजी अणप्पवसयं णरो जहा जाइ ।
सुद्धाई उ ण मुज्झइ मिस्सगुणा वा वि मिस्साई ।।४।।
सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेमु ।
विरियाविरएण समो सम्मामिच्छो' त्ति णायव्वो ।।५।।

जीव सम्यक्त्व गुण के द्वारा इस मिथ्यात्व को विशुद्ध करते हैं जैसे औषध के द्वारा ही मदन कोद्रव कोदु शुद्ध किये जाने होते हैं ।।१।।

जो सर्वथा विशुद्ध है वह कर्म भी सम्यक्त्व है और जो अर्द्ध विशुद्ध है वह मिश्र है और जो अशुद्ध है वह मिथ्यात्व है ।।२।।

जो तीव्रानुभाव योग वाला है वह मिथ्यात्व वेदनीय है सम्यक्त्व में असयत मन्द अनुभाग होता है । और मिश्र में मिश्र अनुभाग होता ।।३।।

मदन कोद्रव—कोदु का भक्षण करने वाला नर जैसे अनात्मवश या आपे ये नहीं रहता है । शुद्ध कोदु के भात के भक्षण से मूर्च्छा को या मोह को प्राप्त नहीं होता है और मिश्र के भक्षण से मिश्र भाव को प्राप्त होता है ।।४।।

जिस जीव के श्रद्धान और अश्रद्धान रूप भाव तत्वों के विषय में होता है उसे विरताविरत के तुल्य सम्यक्त्व मिथ्यात्व रूप मिश्र भाव वाला जानना चाहिए ।।५।।

असंजय सम्मद्दिट्ठी त्ति—ण संजओ असंजओ, सम्मादिट्ठि जेसिं ते भवन्ति सम्मद्दिट्ठी, असंजओ य सो सम्मद्दिट्ठी य सो असंजयसम्मद्दिट्ठि । अपच्चक्खाणावरणाणं उदए वट्टमाणा विरइं ण लहइ । "अप्पच्चक्खाणाणं उदए णियमा चउक्कसायाणं । सम्मदिट्ठीविणरा विरयाविरइं ण पावेन्ति दंसण मोहणिज्जस्स कम्मस्स, खय खयोवसमोवसमे वट्टमाणो अस्संजय सम्मद्दिट्ठी भवइ । उक्तं च—

सद्दहिऊण य तच्चे इच्छन्तो णेव्वुइं परम सोक्खं ।
घेत्तूण णव पयाइं अरिहाइसु णिच्च भत्तिजुत्तो ।।१।।

बन्धं अविरइहेउं जाणन्तो रागदोस दुक्खं च ।
विरइसुहं इच्छन्तो विरइं काउं च असमत्थो ।।२।।

एस असंजय सम्मो णिन्दन्तो पावकम्मकरणं च ।
अभिगय जीवाजीवो अचलिय दिट्ठी चलिय मोहो ।।३।।

जो संयत नहीं है वह असंयत है । जिनके सम्यग्दृष्टि होती है वे सम्यग्दृष्टि होते है । असंयत और जो सम्यग्दृष्टि वाला है वह असंयत सम्यग्दृष्टि है । अप्रत्याख्यानावरण के उदय मे वर्तमान होने से विरति को प्राप्त नहीं करते हैं । सम्यग्दृष्टि होने पर भी विरताविरति को नही पाते हैं । दर्शनमोहकर्म के क्षय, क्षयोपशम या उपशम में वर्तमान असयत् सम्यग्दृष्टि होता है । कहा भी है—

तत्त्वों पर श्रद्धान् करके और निर्वाण परम सुख को चाहते हुए नव पदार्थों का निश्चय करके अरहंतादिको में नित्य भक्ति युक्त है जो बंध को अविरति के हेतु को राग द्वेष और दुःख को जानते हुए विरति सुख को चाहते हुए भी उस विरति को करने में असमर्थ यह असंयत सम्यग्दृष्टि पाप कर्म और करण-परिणाम की निन्दा करते हुए निश्चित जीवाजीव का जानने वाला, अचलित श्रद्धान वाला और चलित-मोह होता है ।

संजया संजओ त्ति—संजओ य सो असंजओ य सो संजयासंजओ, अद्धाओ अस्संजमाओ विरओ अद्धाओ अविरओत्ति, अपच्चक्खाणावरणाणं उदयक्खए पच्चक्खाणावरणाणं च उदय वट्टमाणे संजयासंजओ भवइ ।

"आवरयन्तिय पच्चक्खाणं अप्पमवि जेण जीवस्स
तेणाऽपच्चक्खाणावरणा णमु होइ अप्पत्थे ।।१।।

सव्वं पचक्खाणं जेणावरयन्ति अभिलसन्तस्स ।
तेण उ पच्चक्खाणावरणा भणिया णिरुत्तीहिं ।।२।।

सम्मद्दंसणसहिओ ठोण्हन्तो विरइमप्पसत्तीए ।
एक्कव्वयाइ चरिमो अणुमइमेत्तो त्ति देसंजई ।।३।।

परिमियमुवसेवन्तो अपरिमिय मणन्तयं परिहरन्तो
पावइ परम्मिलोए अपरिमिय मणन्तयं सोक्खं ।।४।।

पमत्तसंजओ त्ति—पमत्तो य सो संजओ य सो पामत्तसंजओ अपच्चक्खाणा-वरणोदय रहिओ, संजलणाणं उदए वट्टमाणो पमाय सहिओ पमत्तसंजओ ।

"विकहा कसाय विकडे, इन्द्रियणिद्दा पमाय पञ्चविहो ।
एक सामन्नतरे जुत्तो विरओऽपि हु पमत्तो ।।१।।

जह रागेण पमत्तो ण सुणइ दोसं गुणं च बहुयं पि
गुत्तीसमिइपमत्तो पमत्तविरओ त्ति णायव्वो ।।२।।

संयत और असंयत संयतासंयत अर्द्ध असंयम में विरत और अर्ध में अविरत अप्रत्याख्यानावरण के उदय क्षय से और प्रत्याख्यान के उदय में वर्तमान संयतासंयत होता है। "अल्प भी जीव के प्रत्याख्यान को रोकता है इस कारण अप्रत्याख्याना-वरण अल्पार्थ में निश्चय से प्रयुक्त है। और जिसके द्वारा सर्वप्रत्याख्यान की अभिलाषा करने वाले का वह प्रत्याख्यान ढक दिया जाता है इसलिए निरुक्ति के द्वारा प्रत्या-ख्यानावरण कहते हैं। सम्यग्दर्शन सहित आत्मशक्ति से विरति को ग्रहण करने वाला एक व्रतादिक को आदि चरम अनुमतिपर्यंत देशयति होता है ।।३।। परिमित का उपसेवन करने वाला अपरिमित अनंत को छोड़ने वाला परलोक में अपरिमित अनंत सुख को पाता है ।।४।।

प्रमत्तसंयत—प्रमत्त और सयत प्रमत्तसंयत है। अप्रत्याख्यानावरण के उदय से रहित संज्वलन के उदय में वर्तमान प्रमाद सहित प्रमत्तसंयत होता है। "विकथा कषाय इन्द्रिय स्नेह निद्रा ऐसे प्रमाद पांच प्रकार का है। इन सामान्यतर में
४ ४ ५ १ १
लगा हुआ भी विरत भी प्रमत्त संयत है। जैसे राग के द्वारा प्रमत्त गुण और दोष को बहुत भी नहीं जानता सुनता, गुप्ति-समिति--प्रमत्त प्रमत्त-विरत है ऐसा जानना चाहिए।

अपमत्तसंजओत्ति—अपमत्तोय सो संजओ य सो अप्पमत्तसंजओ सर्व प्रमाद रहित इत्यर्थः।"विकहादयो पमाया तस्सहियो सो पमत्तविरओ उ। सव्वप्पमाय रहिओ विरओ सो अप्पमत्तो उ ।।१।।

अप्रमत्त और जो संयत है वह अप्रमत्त संयत है अर्थात् सर्वप्रमाद रहित है।

जिसके विकथा आदि प्रमाद है या प्रमाद से सहित है ऐसा वह प्रमत्तविरत है और जो सर्वप्रमाद से रहित है वह अप्रमत्त है।

अपुव्वकरणपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगात्ति-पुव्वंकरणं पुव्वकरणं, ण पुव्व-करणं अपुव्वकरणं,अपुव्वकरणं पविट्ठा अपुव्वकरण पविट्ठा,तेसु अपुव्वकरण पविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा य। बिइयं नामं नियट्टिणो त्ति परोप्परं परिणामं णियट्टि त्ति·नियट्टो जातो तेसिं समए समए असङ्खेज्जलोगागास पएसमेत्ताणि विसोही ठाणाणि भवन्ति, तत्थ पथम समए यदि वट्टन्ता विसरिसपरिणामा किं अपुव्वकरणं ? कहं वा पवेसो भवइ त्ति तं भन्नइ-अपुव्वकरणट्ठाणाणि असंखेज्ज लोगागासपएसमेत्ताणि विसोहिस्ट्ठाणि। तं जहा :—

अपूर्वकरण प्रविष्टों में उपशामक और क्षपक हैं। जो पूर्व करण हो वह पूर्व-करण है, जो करण पहले न हो वह अपूर्वकरण है। जो अपूर्व करण-परिणाम में प्रविष्ट हैं वे अपूर्वकरण प्रविष्ट हैं। उन अपूर्व करण प्रविष्टों में उपशामक और क्षपक हैं। दूसरा नाम 'नियट्टिणो' निवर्तमान है परस्पर परिणाम निवर्तमान-लौटकर समान होने वाले, निवर्तमान हुए। उनके समय समय में असंख्यात लोकाकाश प्रमाण विशुद्ध स्थान होते हैं। वहां प्रथम समय में यदि वर्तमान विसदृश परिणाम हैं तो अपूर्वकरण क्या है ? और प्रवेश कैसे होता है ? उसको बतलाते हैं : अपूर्वकरण स्थान असख्यात लोकाकाश प्रदेश मात्र विशुद्धि स्थान हैं—वे इस प्रकार हैं :—

अपुव्वकरणस्स पढमसमए विसोहिट्ठाणाणि सव्वथोवाणि। बिइय समए वि विसोहिठाणाणि विसेसाहिगाणि। तइय-समए विसेसाहिगाणि। एवं विसेसाहिगाणि विसेसाहिगाणि ताव जाव अपुव्वकरण चरिम समओ त्ति। अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहन्नया विसोहि थोवा, तस्सेवुक्कोसिया विसोहि अणन्तगुणा बिइय-समए जहन्निया विसोहि अणन्तगुणा, तस्सेवुक्कसिया विसोहि अणन्तगुणा। तइयसमए जहन्निया विसोहि अणन्तगुणा, तस्सेवुक्कसिया विसोहि अनन्तगुणा, एवं अणन्तगुण सेढीए णायव्वं जाव अपुव्वकरणस्स चरिम समओ त्ति। अपुव्वकरणस्स पढमसमए जाणि विसोहिट्ठाणाणि बिइयसमए ततो अपुव्वाणि त्ति, तम्हा विसोहि परिणामट्ठाणि अपुव्वाणि त्ति वुच्चन्ति।

अपूर्व करण के प्रथम समय में विशुद्धि स्थान सबसे कम हैं। दूसरे समय में विशुद्धि स्थान विशेष अधिक हैं। तीसरे समय में विशेष अधिक हैं। इस प्रकार विशेष अधिक विशेष अधिक तब तक ले जाना चाहिए जब तक अपूर्व करण का चरम समय है। अपूर्व करण के प्रथम समय में जघन्य विशुद्धि स्थान अल्प है उसकी ही उत्कृष्ट

विशुद्धि अनन्तगुणी है। दूसरे समय में जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणी है। उसी की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। तीसरे समय में जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है। उस की ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। इस प्रकार अनन्तगुणी श्रेणी में जानना चाहिए जब तक अपूर्व करण का चरम समय है। अपूर्व करण के प्रथम समय में जो विशुद्धि स्थान है दूसरे समय में उससे अपूर्व हैं इसलिए विशुद्धि परिणाम स्थान अपूर्व कहे जाते हैं।

ताणि अपुव्वाणि विसोहि परिणामट्ठाणाणि पविट्ठा अपुव्वकरणपविट्ठा तेसु अपुव्वकरणपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगाय, उवसमइस्सन्ति त्ति उवसामगा। खवइस्सन्ति त्ति खवगा। ण इयाणि उवसमयन्ति त्ति, खयन्ति त्ति वा, किंतु अभिमुह भावेणेयमभिहियं, निल्लेवणयाए पयडिं न खवयति ठिइघायं पुण करोति उक्तं च—

> सो अणुभागठिईणं घायमपुव्वं करेइ ठिइबन्धं
> अणुभागं च विसोहिं उदीरणा उदयगुण सेढी ॥१॥
> तम्हा अपुव्वकरणो विरओ उवसन्तमाण मयरागो
> सो उवसामग-खवगो दुविहो उवसमण खवणरिहो" ॥२॥

जहा रायारिहो कुमारो राया इति।

> "अत्थं जहा वयमी विणियट्टिय इन्दियत्थु विसयगणो
> सुविसुद्ध भावलेसो सुक्कज्झाणो णिरुद्धतणू ॥१॥
> णय उवसमेइ कम्मं खवेइ तम्मि य अपुव्वकरणम्मि
> करिहिइ उवसम खवणं जह घयकुम्भो तहा सोवि ॥२॥

वे अपूर्व विशुद्धि परिणाम स्थान प्रविष्ट, अपूर्वकरण प्रविष्ट हैं उनमें अपूर्व करण प्रविष्टों में उपशामक और क्षपक हैं। जो उपशम करें वे उपशामक हैं जो क्षपण करें वे क्षपक हैं जो वर्तमान में न तो उपशम करते हैं न खपण करते हैं किन्तु अभिमुख भाव से यह कहा गया है जीव निर्लेप अवस्था में प्रकृति का क्षय नहीं करता है किन्तु स्थिति घात कर सकता है। कहा भी है—

वह अनुभाग स्थिति का अपूर्वघात करता है स्थिति बन्ध और अनुभाग को भी करता है विशुद्धि उदीरणा-उदय गुण श्रेणी (निर्जरा) को भी करता है। इसलिए अपूर्वकरण विरत सद्धर्ममय मन मदराग को करने वाला उपशामक और क्षपक दो प्रकार का है उपशमन क्षपण में योग्य है जैसे राजा होने योग्य कुमार राजा है। "अर्थ को जैसा है कहता हूं। विनिवर्तित किया है इन्द्रिय अर्थ विषय गण को जिसने जो विशुद्ध भाव लेश्या वाला है शुक्र ध्यान युक्त है शरीर का जिसने निरोध

किया है। जो कर्म का उपशम नहीं करता है व क्षपण ही करता है और उस अपूर्व करण में उपशम क्षपण करने की योग्यता है करेगा। जैसे घी का घड़ा वैसे वह भी उपचार से उपशामक है और क्षपक है।

अणियट्टिबायरसंपराइगपविट्टेसु अत्थि उवसामगा खवगा त्ति, ण ,णियहेति अणियट्टिपरिणामों, अहवा ण अस्स णियहणमत्थि त्ति अणियट्टी, अओ तेसिं पढम-समए सव्वेसिं सरिससुद्धी, एवं बियाइसमएसुवि जाव चरिमसमओ त्ति, उक्तं च—

"इतरेतरपरिणामं ण य अइवट्टन्ति बायरकसाया।
सव्वे वि एगसमए तम्हा अणियट्टिनामाते ॥१॥

अथवा प्रकृष्टा उत्कृष्टपरिणामा भावओ वा अणियट्टी, उक्तं च—

"एक्केक्को परिणामो उक्कोसजहन्नओ जओ णत्थि
तम्हा णत्थि णियट्टणमओवि अणियट्टिणामाते।"

बायरो संपराओ जस्स सो बायरसंपरागो, संपरायसद्दो सव्वकम्मेसु वट्टमाणा अहिकारवसाओ कसायवाई परिग्गहो। बायरकसाए वेएमाणो बायर संपरागो त्ति वुच्चइ, अणियट्टी य सो बायरसंपरागो य सो अणियट्टि बायरसंपरागो, अणियट्टि बायरसंपरायं पविट्ठा अणियट्टि बायरसंपराय पविट्ठा, तेसु अणियट्टि बायर सम्पराय पविट्ठेसु अत्थि उवसमगा खवगाय।

अनिवृत्ति बादर सांपराइक प्रविष्ट में उपशामक है और क्षपक है। नहीं लौटता है नहीं निवर्तता है वह अनिवृत्ति परिणाम है अथवा इसके निवर्तन नहीं है इसलिए अनिवृत्ति है अतः उनके प्रथम समय में समान शुद्धि सबके है, इस प्रकार दूसरे आदिक समयों में चरम समय तक समान विशुद्धि है कहा भी है— "अन्यन्य परिणाम का अतिवर्तन नहीं करते हैं और बादर कषाय से युक्त हैं सबके सब ही एक समय में उक्त प्रकार के हैं अतः वे अनिवृत्ति नाम वाले हैं। अथवा प्रकृष्ट या उत्कृष्ट परिणाम भाव वाले हैं अतः अनिवृत्ति है कहा भी है—एक एक परिणाम है, क्योंकि उत्कृष्ट जघन्य नहीं है, निवर्तन नहीं है इसलिये वे अनिवृत्ति नाम वाले हैं ॥१॥

जिसके बादर संपराय-कषाय है वह बादर संपराय है संपराय शब्द सर्व कर्मों में वर्तमान है तो भी अधिकार के वश में यहां कषाय वाचक ग्रहण किया है। बादर कषाय का वेदन करने वाला बादर सांपराय है ऐसा कहा जाता है। वह अनिवृत्ति और बादर सांपराय है अतः अनिवृत्तिबादर सांपराय है अनिवृत्ति बादर सांपराय में प्रविष्ट अनिवृत्ति बादर सांपरायप्रविष्ट हैं उनमें अनिवृत्त बादर सांपराय प्रविष्टों में उपशामक हैं और क्षपक है।

भावं न णियट्टेई विसुद्धलेसो णिरुद्धमयरागो
किट्टीकरणपरिणग्रो बायररागो मुणेयव्वो ।।१।।

सो पुव्व फड्डुगाणं हेट्ठा अण्णाणि फड्डुगाइं तु
पकरेइ अपुव्वाइं अणन्तगुणहीयमाणाइं ।।२।।

तत्तो अपुव्वफड्डुगहेट्ठा बहुगा करेइ किट्टीग्रो
पुव्वाग्रो य अपुव्वेहिंतो ग्रोकड्ढिय पएसे ।।३।।

लो बायर किट्टीग्रो वेएमाणो करेइ सुहुमाग्रो
बायर किट्टीहेट्ठा किट्टीग्रो सुद्धलेसाग्रो ।।४।।

वेएइ बायराग्रो किट्टीग्रो तेण बायरो णाम
कम्माणि उवसमन्तो उवसमगो खवणग्रोश्ववगो ।।५।।

णासेइ तग्रो खवग्रो लोभं मोत्तूण मोहवीसमवि
ग्रहथीण गिद्धितिगमवि तेरस णामावि एत्थेवं ।।६।।

उवसामगस्स ग्रत्थो इमो—

सो पुव्व फड्डुगाणं तु सुहुमा ग्रोकट्टिऊणं किट्टीग्रो
पकरेइ यउवसमग्रो उवसमयन्ति मोहवी समवि ।।७।।

उवसन्तं जं कम्मं ण य ग्रोकड्ढइ णद्देइ उदएवि
णय गमयइ परपगइं ण चेव ग्रोकड्ढते तं तु ।।८।।

भाव को नहीं लौटाता, विशुद्ध लेश्या वाला हैं मदराग रहित होता हैं कृष्टि करने में परिणत है वह बादर राग वाला जानना चाहिए।१। किन्तु वह पूर्व स्पर्धकों के नीचे अन्य अपूर्व स्पर्धकों को अनन्तगुणहीय मान करता है ।।२।। उस के पश्चात् अपूर्वस्पर्धकों के नीचे बहुत बार कृष्टियों को करता है और पूर्ववर्ती अपूर्वों से उत्कर्षित प्रदेश में करता है ।।३।। ? वह बाहर कृष्टि का वेदन करते हुए सूक्ष्म करता है बादर कृष्टि के नीचे कृष्टियों तथा शुद्ध लेश्याओं को करता है ।।४।। बादर कृष्टियों का वेदन करता है इस कारण बादर (सांपराय) नाम है। कर्मों का उपशम करते हुए उपशमक और क्षपण करने वाला क्षपक है। तब क्षपक लोभ को छोड़कर मोह की बीसों ही कोसों दूर करता है अथ स्त्यानगृद्धित्रिक और नाम का तेरह का भी यहीं क्षपण करता है ।।६।। उपशामक का अर्थ निम्न प्रकार यह है—

वह पूर्व स्पर्धकों का तो अपकर्षण करके सूक्ष्म कृष्टियों को करता है और उपशमक मोह की बीसों प्रकृतियों का उपशम करता है जो उपशान्त कर्म है न तो उसका अपकर्षण करता है न उदय में ही देता है न संक्रमण करता है और न उसका अपकर्षण ही करता है। किन्तु

सुहुमसम्पराइग पविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा त्ति-सुहुमोइ सम्पराओ जस्ससेसुहुमसम्परायो, सुहुमसम्परायं पविट्ठा सुहुम सम्परायपविट्ठा, तेसु सुहुम सम्पराय पविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगाय बायर रागेण कयाओ किट्टिओ सुहुमो वेएइ जतो। आहगाहाओ—

सम्मं भावपरायण गुणेण किट्टीपकिट्टि करणेण
मोहस्से क्कारसमी बारसमि वाबि जा किट्टी ॥१॥

बारसमी जा किट्टी शुद्धा किट्टी करेइ सुहुमाओ
पक्कार समीएँ ठिओ कड्ढिय सुहुभाउ किट्टीओ ॥२॥

बायर–रागेण कया सुहुमो वेएइ सुहुम किट्टओ
तम्हा सुहुम कसाओ सुहुमो सुद्धप्पयोग्गा ॥३॥

उवसमगो उवसमयइ खवगो णासेइ सुहुम किट्टीओ
ते पुण विसुद्धभावा जन्ति दुवे दुविह सेढ़ीओ ॥४॥

सूक्ष्मसाम्पराय प्रविष्टों में उपशामक है और क्षपक हैं। सूक्ष्म सांपराय जिसके है वह सूक्ष्म सांपराय है जो सूक्ष्म सांपराय में प्रविष्ट हैं वे सूक्ष्म सांपराय प्रविष्ट हैं उन सूक्ष्म सम्पराय प्रविष्टों में उपशामक और क्षपक हैं। बादरराग के द्वारा कौनसी कृष्टियों का बादर साम्पराय वेदन करता है। गाथाओं को कहते हैं :—

सम्यक् भाव परायण गुण के द्वारा कृष्टि प्रकृष्टि के करने से मोह की जो ग्यारहवीं या बारहवी कृष्टि है जो बारहवीं कृष्टि शुद्ध है सूक्ष्म कृष्टियों को करती है ग्यारहवीं में स्थित उत्कर्षण करके सूक्ष्म कृष्टियों को करता है बादर राग के द्वारा कभी सूक्ष्म वाला सूक्ष्म कृष्टियों का वेदन करता है इसलिये सूक्ष्म कषाय, सूक्ष्म शुद्ध प्रयोगात्मा है। उपशमक उपशामन करता है क्षपक सूक्ष्म कृष्टियों का नाश करता है और वे विशुद्ध भाव वाले दोनों दो प्रकार की श्रेणियों वाले हैं ॥४॥

उवसन्तकसायवीयराय छउमत्थे त्ति—उवसन्ता कसाया जेसिं ते भवन्ति उवसन्त कसाया,वीओ रागो जेसिं ते भवन्ति वीयरागा, उवसन्त कसाया यतेवीयरागा यते उवसन्त कसाया इति सिद्धे वीयराय वयणं अनर्थक मिति चेत् ? न, हेयहेतुमद्वचनात् को हेतु ? किं वा हेतुमत् ? उवसन्त कसायत्तं हेऊ। वीयरागत्त हेतुमत्, तम्हा उवसन्त कसाय वीयरागा इति, छउमं–आवरण छउमत्थणाण सहचरियत्ताओ छउमत्थणाण सहचरियत्ताओ छउमत्थ ववएसो, तम्मि वा चिट्ठइ त्ति छउमत्थो, उवसन्त कसाय बीतरागा य ते छउमत्था य उवसन्त कसाय वीयराय छउमत्था।

उपशान्त कषाय-वीतराग-छद्मस्थ। उपशान्त हो गई हैं कषायें जिनकी वे उपशान्त कषाय होते हैं बीत गया है राग जिनका वे वेबीतराग होते हैं उपशान्त

कषाय और वे वीतराग उपशान्त कषाय वीतराग हैं। 'उपशान्त कषाय' ऐसा सिद्ध होने पर, 'वीतराग' वचन व्यर्थ है यदि ऐसी आशंका हो तो कहते हैं? व्यर्थ नहीं है चूंकि हेतु-हेतुमत् रूप कथन है। कौन हेतु है और कौन हेतु मत्‌ हैं? उपशान्त कषायत्व हेतु है—कारण है और वीतरागत्व हेतुमत् कार्य है। इसलिये 'उपशान्त कषाय वीतराग' ऐसा कहा है। छद्म-ज्ञान आवरण को कहते हैं छद्मस्थ के ज्ञान के साहचर्य से छद्मस्थ व्यपदेश है उसमें जो रहता है वह छद्मस्थ है उपशान्त कषाय वीतराग और वे छद्मस्थ उपशान्त-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ हैं।

खीणकसाय वीयराय छउमत्थ—त्ति खीणा कसाया जेसिं ते भवन्ति खीण कसाया, वी श्रोरागो जेसिं ते भवन्ति वीयरागा, खीण कसाय इति सिद्धे वीयराग गगहणमनर्थं कमिति चेत्? न अनर्थं कंकुतः? खीण कसायवयणं कारणद्व्वविणा-दंसणत्थं, वीयरागवयणं कज्जोवदंसणत्थमिति उभयग्गहणं, अहवा णिमित्तनैमित्तिकववए सत्थं, णिमित्त विणासे नैमित्तिक विणासो भवतीति, छउमत्थणाण सह चरियाओ छउमत्थ इति, जहा कुन्त सह चरिओ कुन्तो, लट्ठिसहचरिओ लट्ठित्ति, तम्मि वा कुइ में चिट्ठइ त्ति छाउमत्थो, खीणकसाय वीयरागो य सो उमत्थो य सो खीण कसाय वीराय छउमत्थो दोण्णिलक्खणपण गाहाओ—

"तम्मि उ कसाय भावाभावे सुद्धं भये अह कसायं
चरित्तं दोण्हपि य उवसन खीणमोहाणं ॥१॥

जलमिन पसन्त कलुसं पसन्तमोहो भये उ उवसन्तो
गय कलुसं जह तोयं गयमोहो खीण मोहो वि ॥२॥

णय राग दोस होऊ भावा य भवन्ति केइ इह लोगे
णय खो भयन्ति केइ उवसन्ते खीण मोहे य ॥३॥

रागप्प दोसरहिओ झायन्तो झाणमुत्तमं खीणो
पावइ परं पमोयं धाइलिगं णासिऊण तलो ॥४॥

क्षीण कषाय-वीतराग-छद्मस्थ-क्षीण हो गई हैं कषाएँ जिनकी वे क्षीण कषाय हैं बीत गया है राग जिनका वे वीतराग हैं। 'क्षीण कषाय' ऐसा सिद्ध होने पर 'वीतराग' ग्रहण अनर्थक है यदि ऐसा कहते हो? कहते हैं—अनर्थक नहीं है। कैसे? क्षीण कषाय वचन कारण द्रव्य के विनाश को दिखाने के लिये है और वीतराग वचन कार्य को दिखाने के लिये है। इसलिये दोनों का ग्रहण किया है। अथवा निमित्त नैमित्तिक व्यपदेश के लिये है। निमित्त के विनाश होने पर नैमित्तिक का नाश होता है। छद्मस्थ ज्ञान के साहचर्य से छद्मस्थ ऐसा कहते हैं। जैसे 'कुन्त' शस्त्र के साहचर्य वाला कुंत, यष्टि लट्ठ से युक्त यष्टि लट्ठ, उस छद्मस्थ में जो रहता है वह छद्मस्थ

है और क्षीण कषाय वीतराग है वह छद्मस्थ। क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ है। दो लक्षण गाथाएँ हैं—

उसमें कषाय भाव के अभाव होने पर शुद्ध यथाख्यात होता है वह चारित्र उमशांतमोह और क्षीणमोह दोनों के होते है ॥१॥ प्रशांत कलुष जल की भांति प्रशान्तमोह उपशांत होता है। कलुष रहित जैसे जल होता है वैसे क्षीण मोह भी॥२॥ कोई भी राग द्वेष भाव इस लोक में नहीं जो उपशांत मोह और क्षीण मोह को क्षुभित करते हैं। राग द्वेष रहित क्षीण कषायवाला उत्तम ध्यान को ध्याते हुए घातित्रय को नाश कर उसके पश्चात् परम प्रमोद को पाता है।

सयोगि केवलित्ति—सह जोगेण वट्टइ त्ति सजोगी, केवलं अमिस्सं संपुन्न वा किं तं केवलं ? णाणं, तं जस्स अत्थि सो केवली सजोगी य सो केवली य सजोगि केवली 'अजोगी केवलि' त्ति ण अस्स जोगो अत्थित्ति अजोगी, एत्थ गाहाओ "चित्तं चित्त पडिणिभं तिकालविसयं तओसलोगमियं। पिक्खइ जुगवं सव्वं सो लोगसव्वथावन्नु॥१॥ विरियं णिरन्तरायं भवइ अणंतं तया य तस्स सया। मणवयण कायसहिओ केवलणाणी सजोगिजिणो॥२॥ सो सो जोगणिरोहं करेइ लेसणिरोहमिच्छन्तो। दुसम य ठिइगं बन्ध जोगणिमित्तंस णिरुणद्ध॥३॥ समए समए कम्मादाणे सइ सन्तयम्मि णय मोक्खो। वेइज्जइ कम्मंपुण ठिइखयाओ उ अज्जिय यं॥४॥ णो कम्मेहिं विरियं जोगं दव्वेहिं भवइ जीवस्स। तस्स अवत्थाणेण णु य सिद्धो दुःसमयठिइबन्ध॥५॥ वायर तणूणं पुव्वं मणोवईवायरे स णिरुणद्धि। आलम्बणाय करणं दिट्ठमिणं तत्थ विरियवओ॥६॥

सयोग केवली—जो योग सहित है वह सयोगी है केवल, अमिश्रयासम्पूर्ण वह क्या है ? ज्ञान है वह जिसके है वह केवली है सयोग और जो केवली है वह सयोग केवली है। अयोग केवली—इस के योग नहीं है अतः अयोगी है। इस विषय में उपयोगी गाथाएं हैं त्रिकाल को विषय करने वाला लोक सहित अलोक को पूर्ण रूप से चित्र के समान विचित्र रूप में युगपद् जो ज्ञान प्रकाश जानता है वह सर्व भाववान् है। जिसके अन्तराय रहित सहाअनंतवीर्य है जो मन वचन काय रूप अप्रयत्नरमक योग सहित केवल ज्ञानी है वह सयोगी जिन है। जो लेश्या का निरोध करने के लिए योग का निरोध करता है॥२॥ वह योग निमित्तक समय स्थिति वाले बन्ध का निरोध करता है॥३॥ समय समय प्रति कर्म के ग्रहण और सत्व के होने पर विप्रमोक्ष नहीं होता है क्योंकि स्थिति पूरी होने पर अर्जित कर्म का वेदन करता है। जिस जीव के मोक्ष द्रव्य कर्म से वीर्य नहीं होता है उस के दो समय स्थिति वाला बन्ध अवस्थान रूप से सिद्ध होता है॥५॥ बादर काययोग की सहायता से पहले

बादर मन वचन का वह निरोध करता है यह आलंबन करण वहाँ वीर्य मय बतलाया है ।६।

'समय द्विगिबंधो' गो. क. गा. २७४ सत्व की अपेक्षा से है ।

बायर तणुमवि णिरुणद्धि सुहुमेणाकायजोगेण,
ण णिरुज्झए उ सुहुमा जोगो सइ बायरे जोगे ।।७।।

सुहुमेण कायजोगेण ततो णिरुणद्धि सुहुमवायमणे ।
भवइ य सुहुमक्किरिओ जिणो तया किट्टिकयजोगे ।।८।।

णासेइ कायजोगं थूलं सोऽपुव्व फड्डगी किच्चा ।
सेसस्स कायजोगस्स तया किट्टी य स करेति ।।९।।

तमवि सजोगं सुहुमंरुद्धन्तो सव्वपज्जयाणुगयं ।
झाणं सुहुमकिरियं अप्पडिवायं च उवयाइ ।।१०।।

झाणे दढप्पिए पुण अक्किरियाऊ तणू भवइ दिट्ठा ।
आणापाणु णिमीलुम्मील विउत्ता अचित्तमिव ।।११।।

जोगा भावाओ पुण तु समयठीतोण कम्मबन्धो त्ति ।
झाणप्पसंहार तिभागसंकुचिय नियदेसो ।।१२।।

लेसा करण णिरोहो जोग णिरोहो य तणुणिरोहेण ।
अह भणिओ विन्नेओ वन्धनिरोहो वि य तहेव ।।१३।।

एसो अजोगिभावो जोगणिरोहेण पत्तगुणगामो ।
अप्पडिवायज्झाणाणी सव्वण्णू सव्वदंसी य ।।१४।।

तम्हा ण ऊण मेत्तो सुहदुक्खाण जिअ सिवं सातं ।
पावइ अलद्ध पुव्वं णिव्वाणमलेस्स णिप्फन्द ।।१५।।

—: चोद्सण्हं गुणट्ठाणाणं अत्थ णिरूपणा कया :—

'बादर काययोग का भी निरोध करता है' सूक्ष्म काययोग के अवलंबन से क्योंकि बादर योग के होने पर सूक्ष्म योग का निरोध नहीं होता है । ७ । सूक्ष्म काय योग के द्वारा सूक्ष्म वचन और मनोयोग का निरोध करता है तब कृष्टिकृत योग में सूक्ष्म क्रिया वाला होता है अपूर्व स्पर्धकों को करके स्थूल काययोग को नष्ट करता है शेष काययोग की तब कृष्टि करता है उस सयोग सूक्ष्म का भी निरोध करते हुए सम्पूर्ण पर्यायों को जानने वाला ध्यान सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति को प्राप्त होता है । ध्यान के दृढ़ात्म होने पर पुनः अक्रिया रूप काय बतलाया है श्वासोच्छ्वास के लने छोडने को अचित्त की तरह निरोध कर देता है इतना विशेष है कि योग के अभाव में पुनः

समय स्थिति वाला कर्म बन्ध नहीं होता। ध्यानात्म संहार से संकोच विभाग रूप निज प्रदेश को संकुचित करके। काय निरोध के साथ लेश्या करण और योग निरोध कहा गया उसी प्रकार बंध निरोध भी यह अयोगी भाव योग निरोध से अन्वर्थ गुणनाम प्राप्त हुआ वह सूक्ष्म क्रिया निवृत्ति अप्रतिपात ज्ञानी ध्यानी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। इसलिये संसार के सर्व सुख दुःख से रहित जीव शिव सातामय अलब्ध-पूर्व णिव्वाण को लेश्या और निस्पंद रहित हो पाता है।

चौदहगुण स्थानों की अर्थनिरूपणा की गई।

इयाणि ते चेव गइयाइमग्गणट्ठाणे सु मग्गिज्जन्ति

दसवां गाथा सूत्र

सुरनारएसु चत्तारि हुंति तिरएसु जाण पंचेव।
मणुयगईए वि तहा चोद्दस गुणनामधिज्जणि ॥१०॥

व्याख्या—'सुरनारगेसु' त्ति गई चउव्विहा, णिरयाइ 'सुरणारगेसु चत्तारि होंति', त्ति, देवणेरइगेसु चत्तारि गुणट्ठाणि मूलिल्लाणि भवन्ति, तेसु विरई णत्थि त्ति काउं उवरिल्लाणि णभवन्ति। 'मणुयगईए वि तहा चोद्दसगुण णामधेज्जाणि' त्ति मणुस्सगईए चोद्दस वि गुणट्ठाणाणि, कहं ? सव्वे भावा मणुएसु सम्भवन्ति ॥१०॥

एवं मग्गणट्ठाणेसु णेयव्वं अइसंखित्तत्ति काउं भणइ—

अब गति आदि मार्गणाओं में वे ही गुणस्थान खोजे जाते हैं।

देव और नारकीयों में चार गुणस्थान होते हैं और तिर्यन्चों में पांच ही गुण-स्थान हैं ऐसा जानों। तथा मनुष्य गति में चौदह गुणस्थान हैं।

गति चार प्रकार प्रकार की है—नरकादि। देव नारिकीयों में चार गुण स्थान होते हैं। देवनारकीयों में प्रारम्भ के चार गुणस्थान होते हैं उन में व्रत नहीं है। इसलिये उपर के पंचमादि गुणस्थान नहीं होते हैं। 'तिरिएसु जाण पंचेव' त्ति तिरियगईए पंचगुण ट्ठाणाणि मूलिल्लाणि' तिर्यञ्चगति में मूल के पांच गुण स्थान है तेसु सव्व विरई णत्थि त्ति काउं उवरिल्लाणि ण सम्भवन्ति। विरति न होने से उपर के गुणस्थान नहीं हैं तथा मनुष्यगति में चौदह गुणस्थान होते हैं कैसे ? चूंकि सर्वभाव मनुष्यों में सम्भव हैं।

ऐसे अतिसंक्षिप्त करके कहते हैं मार्गणाओं में ले आना चाहिए।

इंदिएत्ति—एगिंदियाईणि पुव्व वण्णियाणि चोद्दसवि जीवट्ठाणाणि (तेसु) सव्वेसुवि मिच्छद्दिट्ठी लब्भइ। बायरेगिंदिय—वि—ति—चउ—असन्नि पंचिदिएसु लद्धीपज्जत्तगेसु करणेण अपज्जत्तगेसु, सन्निपंचिन्दिएसु करणपज्जत्तीएसु करण पज्जत्तीए पज्जत्तापज्जत्तगेसु सासायण सम्मद्दिट्ठी लब्भइ, लद्धि अपज्जत्तगेसु सव्वत्थ णत्थि। सेसा सव्वेवि सन्निपज्जत्तगम्मि करण पज्जत्तिए पज्जत्तगम्मि लभन्ति, णवरि असंजय सम्मद्दिट्ठी करणपज्जत्त पज्जत्तगेसुवि लब्भन्ति।

[किसी के मत से एकेन्द्रिय से असैनी तक में सासादन नहीं हैं। किसी के कथन से वह बादर एकेन्द्रियादिक में किसी अपेक्षा से वह हो सकता है किन्तु वह तत्काल में घटित नहीं होता है तो भी उसका सग्रह किया है। संभव है निकट भूतपूर्व नेगम की अपेक्षा ऐसा कहा है।]

इन्द्रिय मार्गणा में—एकेन्द्रियादि पूर्व में वर्णित चौदह जीव समास हैं उनमें सबके सब में भी मिथ्यादृष्टि पाया जाता है बादर, एकेन्द्रिय—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चौ, इन्द्रिय असैनी पचेन्द्रियों में लब्धि अपर्याप्तकों में, निवृत्ति के द्वारा अपर्याप्तकों में सैनी पचेन्द्रियों में निवृत्ति पर्याप्तकों मे निवृत्ति पर्याप्ति में पर्याप्ता पर्याप्तों में सासादन—सम्यग्दृष्टि प्राप्त होता है लब्धि अपर्याप्तकों में सर्वत्र सासादन नहीं है। शेष सब सैनी पर्याप्तकों में निवृत्ति पर्याप्तियों में पर्याप्त में प्राप्त होते हैं इतना विशेष है कि—असंयतसम्यग्दृष्टि निवृत्ति पर्याप्तर पर्याप्तों में भी प्राप्त होते हैं।

[करण—अर्थात् इन्द्रिय, या शरीर इन्द्रियादि की निवृत्ति रचना विशेष अवश्यपूर्ण होगी वह निवृत्ति या करण के नाम से सूचित किया है भले ही वर्तमान में वह अपूर्ण हो।]

काएत्ति—पुढवि आइ जाव तसकाइओत्ति, मिच्छद्दिट्ठी सव्वेसुवि; बायर पुढवि आउपत्तेय वणस्सइगेसु लद्धिपज्जत्तगेसु करण अपज्जत्तग काले चेव सासणों लब्भइ, तेसु उववज्जति त्ति काउं, तसेसुवि लद्धिए पज्जत्तगेसु करणपज्जत्तगा—पज्जत्तगेसु लब्भति, तमेसु एव चेव अस्संजयसम्मद्दिट्ठीवि। सेसा सव्वे तसकाय-पज्जत्तगेसु करणपज्जत्तीए पज्जत्तगेसु चेव लब्भन्ति॥ जोगो अविकृतः॥

वेदेति—मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव अणियट्टिअद्धाए सखेज्जतिभागमेत्तं सेसत्ति ताव तिसुविवेएसु लब्भन्ति, हेट्ठील्ला सव्वे सवेयगा, उवरिल्ला अवेयगा॥

कायमार्गणा में पृथ्वी आदि से त्रसकाय पर्यन्त हैं। मिथ्यादृष्टि सब कायों में हैं। किन्तु सासादन बादर पृथ्वी जल और प्रत्येक वनस्पति के लब्धि पर्याप्तकों मे करण अपर्याप्त काल में ही प्राप्त होता है। यह कथन 'उनमें वह उत्पन्न होता

है इस अपेक्षा से है'। त्रसों में भी लब्धि पर्याप्तकों में निवृत्ति पर्याप्तक और निवृत्ति अपर्याप्तकों में प्राप्त होता है। त्रसों में इसी प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि भी होता है शेष सब त्रसकाय पर्याप्तकों में निवृत्ति पर्याप्त में, पर्याप्तकों में ही प्राप्त होते हैं।

योग (का व्याख्यान आगे करेंगे अतः) अधिकृत है।

'वेद'—मार्गणा में मिथ्यादृष्टि आदि से लेकर अनिवृत्ति बादर सांपराय के काल विशेष में संख्यात भाग मात्र शेष रहने तक तीन वेद प्राप्त होते हैं। नीचे के सब गुणस्थान सवेद हैं उपर के गुण स्थान भाववेद से रहित हैं।

कसायत्ति—मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव अनियट्टि अद्धाए ससेज्जइ भागमेव सेसत्ति हेट्ठिल्ला सव्वेवि कोहमाण मायासु लब्भन्ति उवरिल्ला अप्पकसाइणो सव्वे। लोभंमि जाव सुहुम रागस्स चरिम समओ त्ति जाव हेट्ठिल्ला सव्वेवि लब्भति, सेसा अकसाइणो ।। णाणाणि अधिकृतानि ।। संजमत्ति—मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव असंजय सम्मद्दिट्ठी ताव सव्वे असजया, संजयासंजयो एक्कंमि चेव संजयासंजयट्ठाणे, सामाइयछे ओवट्ठावणसंजमेसु पमत्तसंजमप्पभिई जाव अणियट्टि त्ति सव्वेवि। परिहारविसुद्धि संजमें पमत्तापमत्तसंजया, सुहुमसंपराइओ एक्कंमि चेव सुहुम सपराइय संजयट्ठाणे, उवसंताइ जाव अजोगि त्ति सव्वे अहक्खायसंजयट्ठाणे ।। दसण मधिकृतं ।।

कषाय मार्गणा में—मिथ्यादृष्टि से अनिवृत्ति काल के संख्यात भाग शेष रहने तक नीचे के सब ही क्रोध मान माया में प्राप्त होते हैं। इनमें उपर के सब अल्प कषाय वाले हैं। लोभ में सूक्ष्म सांपराय के चरम समय तक हैं नीचे के सब ही गुणस्थान लोभ प्राप्त हैं। शेष कषाय के उदय से रहित हैं। ज्ञान अधिकृत हैं।

संयममार्गणा में—मिथ्यादृष्टि आदि असंयत सम्यग्दृष्टि पर्यंत असंयत हैं, संयतासंयत एक संयतासंयत स्थान में ही हैं। सामायिक छेदोपस्थापना संयमों में प्रमत्त संयमादि से अनिवृत्ति तक सब ही हैं। परिहार विशुद्धि संजम में प्रमत्त और अप्रमत्त संयत हैं और सूक्ष्म सांपराय एक सूक्ष्म सांपराय संयमस्थान में ही है। उपशांतमोहादि अयोग केवली पर्यन्त सब अथाख्यात संजम स्थान में होते हैं।

"दर्शन अधिकृत है"।

लेसेत्ति—मिच्छद्दिट्ठीप्पभिई जाव असंभोत्ति सव्वेवि छसु लेसासु, संजया-संजय पमत्तापमत्ता य तेउ आइ उवरिल्लतिगलेसासु केई भणन्ति संजया संजय पमत्तविरया य छसु लेसासु वट्टन्ति, अन्ने भणन्ति अबंत संकिलिटठस्स वब भावो

णत्थि, अन्ने भणन्ति ववहारओ भवइ, अपुव्व करणाइ जाव सजोगित्ति सव्वेवि सुक्कलेसाए वट्टन्ति अलेसिओ पुद्गल व्यापारा भावात् ।।

भव्वत्ति—मिच्छाइ जाव अजोगित्ति सव्वे भव सिद्धिकेसु वट्टन्ति, अभविकेसु मिच्छादिट्ठी वट्टइ समत्ताइ भावा अभिविएसु ण संभन्ति त्ति उवरिल्ला ण वट्टन्तित्ति ।

लेश्या मार्गणा में मिथ्यादृष्टि आदि असंयत तक सब छह लेश्याओं में वर्तते हैं। संयमासंयम प्रमत्त और अप्रमत्त तेजपीतादि उपर की तीन लेश्याओं में होते हैं। कितने कहते हैं कि संयतासंयत और प्रमत्तविरत छह लेश्याओं में वर्तते हैं; अन्य कहते हैं कि अत्यन्त संलेश परिणाम में व्रत भाव नहीं होता हैं, अन्य कहते हैं कि व्यवहार से वैसा होता है। अपूर्व करणादिक से सयोगी तक सब हो शुक्ल लेश्या में रहते हैं। पुद्गल व्यापार के अभाव से लेश्या रहित होते हैं।

भव्यमार्गणामें—मिथ्यात्वादिक से अयोगी तक हैं। सब भव सिद्धिकों में वर्तते हैं अभव्यों में मिथ्यादृष्टि रहता है सम्यक्त्व वगैरह भाव अभव्यों में उत्पन्न नहीं होते हैं। उपर के भाव नहीं होते अर्थात् प्रथम मिथ्यात्वगुणस्थान ही अभव्य के होता है।

संमेत्ति—सम्मद्दिट्ठी खाणइसम्मद्दिट्ठीसु अविरवादि जाव अजोगी, वेदग-संम्मतं अविरयाई जाव उवसंत कसाओ, सेसा अप्पप्पणो ठाणे ।। सन्नित्ति-मिच्छ-दिठ्ठियादि जाव खीण-कसाओ सव्वेवि सन्निमि मिच्छद्दिट्ठी सासायणाय असन्निमिवि वट्टन्ति, सजोगी अजोगी य णोसन्नि णोअसन्नि, जओ केवणाणिणो।

आहारेत्ति-मिच्छादिट्ठि जाव सजोग केवली ताव सव्वे आहारणेसु लब्भन्ति, मिच्छाद्दिट्ठी सासण असंजयओ सजोगि-केवली य अणाहारगेसुवि लब्भंति, विग्गहे समुग्घाए य। अजोगी अणाहारगोचेव, कहं ? वाक्कायमणो-जोग-पुग्गल व्यापार रहितत्वात्।

गुणट्ठाणाणि मग्गणाठाणेसु भणियाणि ।।

सम्यक्त्व मार्गणा में—क्षायिकसम्यग्दृष्टि अविरतादि से अयोगी तक है, वेदक सम्यकत्व अविरतादि से अप्रमत्त तक में, उपशम सम्यक्त्व में अविरतादि से उपशांत कषाय तक हैं शेष अपने अपने स्थान में हैं।

सैनी में मिथ्यादृष्टि से क्षीणकषाय तक सब गुणस्थान संभव हैं। मिथ्या-दृष्टि और सासादन असैनी में भी किसी अपेक्षा से रहते हैं। सासादन असैनी में भूतपूर्व नैगम नय की अपेक्षा कहा हैं चूंकि वह मर कर असैनी में उत्पन्न हो सकता है। सयोगी और अयोगी न सैनी हैं न असैनी क्योंकि वे केवलज्ञानी हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान वाले हैं।

आहारमार्गणा में-मिथ्यादृष्टि आदि से सहयोग केवली तक सब आहारक में हैं मिथ्यादृष्टि, सासादन असंयत और सयोग केवली अनाहारकों में भी पाये जाते हैं यह कथन विग्रहगति और समुद्घात की अपेक्षा से है और अयोगी अनाहारक ही हैं कैसे ? चूंकि वचन काय मन-योग और पुद्गल के व्यापार से रहित हैं।

गुणस्थान मार्गणाओं में मार्गित हुए

इयाणि उवओगा गुणट्ठाणेसु भवन्ति—

ग्यारहवाँ गाथा सूत्र

दोण्हं पंच उ छच्चेव दोसु एक्कंमि होंतिवा मिस्सा
॥ सत्तुवओगा सत्तसु, दो चेवयदोसुठाणेसु ११ ॥

व्याख्या:—

दोण्हंत्तिदोण्हं गुणट्ठाणाणं मिच्छादिट्ठि सासणाणं पंच पंच उवओगा भवन्ति, तं जहां ? मइअन्नाणं, सुयअन्नाणं, विभंगणाणं, चक्खुदंसणं, अचक्खु-दंसणं ति। अन्ने भवन्ति-ओहिदंसण सहिया छ उवओगा अन्नाणकारणं पुव्ववक्खाणियं रोहिदंसणं चिंत्यं। 'छच्चेव दोसु' त्ति अस्संजयसंजया संजएसु एएसु दोसु छ उवओगा, तं जहा आभिणिबोहिसुय ओहि चक्खु अचक्खु ओहिदंसणमिति 'एकंमिहोंति वा मिस्स' त्ति सम्मामिच्छदिट्ठीम्मि वा मिस्सा इति कहं ? भन्नइ—

अब उपयोग गुणस्थानों में बतलाते हैं—

आरम्भ के दो गुणस्थानों में पांच उपयोग होते हैं। वे इस प्रकार हैं। मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन। अन्य आचार्य कहते हैं। कि अवधिदर्शन सहित छह उपयोग होते हैं। अज्ञान के कारण को पहले बतला चुके हैं अवधि दर्शन (के विषय में) चिंतनीय है। असंयत सम्यग्दृष्टि और सयातासंयत में छह उपयोग हैं वे इस प्रकार हैं:—आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन। एक मिश्रगुणस्थान में तीन मिश्र मिश्र ज्ञान और तीन दर्शन होते हैं। कैसे ? उसके उत्तर में कहते हैं:—

मइ अन्नाणं आभिणिबोहियणाणेण मिस्सियं, सुयअन्नाणं, सुयणाणमिस्सियं, विभंगणाणं ओहिणाणेण मिस्सियं, चक्खु अचक्खु होहिदंसणंति मिस्सि सद्दोअद्ध विशुद्धस्थे जहा अद्धाविसुद्धा कोद्दवा ते भुंजमाणस्स जेरिसी सरीरचेट्ठा तारिसं णाणं ति नासुद्धं नात्यर्थं सुद्धं वा 'सत्तुवओगा सत्तसु' त्ति पमत्त संजयाइ जाव खीणकसाओ ताव

सव्वेसुवि सत्त सत्त उवओगा भवन्ति, असंजयसम्मदिट्ठीस्स पुव्वुत्ता छ, ते चेव मणपज्जवणाण सहिया सत्त दो चेव य दोसुगणेमु 'त्तिदोचेव उवओगा दोसु सजोगि अजोगिट्ठाणेसु केवलणाणं केवलदंसणमिति ।।११।।

गुणट्ठाणेसु उवओगा भणिया

मति अज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान से मिश्रित है,श्रुत अज्ञान श्रुतज्ञान से मिला है विभंग-ज्ञान अवधिज्ञान के साथ मिश्रित है चक्षु अचक्षु और अवधिदर्शन । (यहां)मिश्र शब्द अर्ध विशुद्ध अर्थ प्रयुक्त हुआ है जैसे अर्ध विशुद्ध मदन कोद्रव । उनके खाने वाले के जैसी शरीर की चेष्टा होती है उस प्रकार का ज्ञान है न अति अशुद्ध है और न अतिशुद्ध । प्रमत्त संयतादि क्षीण कषाय तक सब में सात सात उपयोग होते हैं असंयत सम्यग्दृष्टि के पूर्वोक्त छह वे ही हैं और मन: पर्यय ज्ञान सहित सात होते हैं । दो गुणस्थानों में दो उपयोग हैं । सयोग केवली और अयोग केवली गुणस्थानों में केवल ज्ञान और दर्शन ये दो उपयोग होते हैं ।।११।।

इयाणि जोगा वुच्चंति

बाहरवाँ और तेहरवाँ गाथा सूत्र

तिसु तेरस, एगे दस नव जोगा होंति सत्तसु गुणेसु
एक्कारस य पमत्ते, सत्तसजोगे अजोगिक्के ।।१२।।

तेरस चउसु, दसेगे पंचसु नव दोसु होन्तिएगारा
एगम्मि सत्त जोगा अजोगि ठाण सवइएगं ।।१३।।

प्रथम में, दूसरे में, और चौथे में गुण स्थान तेरह योग होते हैं, तीसरे में दस योग होते हैं। ५-७-८-९-१०-११-१२ सात गुण स्थानों में नो योग होते हैं। छठे में ग्यारह योग होते हैं अयोगी, एक गुणस्थान एक में योग रहित है।

१-२-४-४-६ चारगुणस्थानों में १३, तीसरे एक में १०,८-९-१०-११-१२वें पांचगुणस्थानों में नौ योग, दो ५-७ गुणस्थानों में ग्यारह, एक मे १३ वें में सात योग होते हैं और १४ वें में अयोगी स्थान एक योगरहित ही होता है।

व्याख्या:—

'तिसु तेरस' त्तितिसुगुणट्ठाणेसु मिच्छदिट्ठी सासाण असंजयसम्मादिट्ठीसु-तेरस जोगा भवन्ति, तं जहा—चत्तारि मणजोगा, चत्तारि वइजोगा, ओरालिय काय-

जोगो, ओरालिय मिस्सकायजोगो वेउव्विय कायजोगो, वे उव्विय मिस्सकायजोगो कम्मइगकायजोगोत्ति, कम्मइगकायजोगो, अन्तर गइए वट्टमाणाणं, ओरालियमिस्स वेउव्वियमिस्स य अपज्जत्तगद्धाए, सेसा सभावत्थस्स चउगइके पडुच, 'एगे दस' त्ति सम्मामिच्छद्दिट्ठीम्मि दस जोगा, मीसदुग कम्मइगवज्जिया त्ते चेव मरणाभावो तब्भावेण णत्थित्ति तओ एए तिन्निवि न भवन्ति। 'णवसत्तसु' त्ति संजयासंजय अप्पमत्त अपुव्वकरणाइ जाव खीणकसाओ एएसु सत्तसु णव-णव जोगा भवन्ति, सम्मामिच्छाद्दिट्ठीस्स जे दस ते चेव वे उव्विय कायजोगरहिय णव भवन्ति, वे उव्वियं एएस करेन्ति त्ति वेउव्वि कायोगो णत्थि।

'एक्क मि हुंति एक्कारस' त्ति एक्कंमिपमत्त संजयम्मि एक्कारस जोगा, पुवुत्ता णव आहारक काययोग आहारकमिस्सकोयजोग सहिया एकारस भवन्ति, आहारगकायोगो आहारगामिस्स कायजोगो य आहारग-लद्धि सहियस्स संजयस्स आहारगसरीरं उप्पएन्तस्स पमत्तो उप्पएइ न अप्पमत्तो त्ति तम्मि एक्कारस। एत्थ देसविरयप्पमत्ताणं केसिचि वेउव्विय कायजोगो अत्थित्ति ते पुण एवं पढन्ति'तेरस चउसु दसेगे पंचसु णव दोसु होन्ति एक्कारा' त्ति तेरस चउसुत्ति पुव्वं तिण्हं तेरस तेरस जोगा भणिया, चउत्थो पमत्तसंजओ, एक्कारस ते चेव वेउव्विय (आहारग) दुगसहिया तेरस पमत्तस्स संजयस्स भवन्ति। दसेगेत्ति भणियं, 'पंचसु णव' त्ति-देसविरय अप्पमत्ते मोत्तूण सेसा पंच तेसु दुवुत्ता णव। 'दोसु होन्ति एक्कारस' त्ति।

एक्कम्मि सजोगि केवलिम्म सत्तजोगा, सच्चमणजोगो, असच्चमणजोगो एवं वायावि, ओरालिय कायजोगो, ओरालियमिस्सकायोगो कम्मइग कायोग इति। मणवाया मोसजुत्ता ण भवन्ति, छउमत्थरहितत्वात्। ओरालय मिस्स कायोगो कम्मइग कायोगो य समुग्घायगयस्स, ओरालियकाययोगो सट्ठाणे, सेसाण सं भवन्ति। 'अजोगिट्ठाणं हवइएक्क' ति जोगविरहियं ठाणं एक्कं अजोगिट्ठाणमेव मनोवाक्कायरहितत्वात् ॥१२॥१३॥

उवओगा जोगविही य जीवट्ठाणेसु भणिया

मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत सम्यग्दृष्टि में तेरह तेरह योग होते हैं, वे इस प्रकार है चार मन योग, चार वचन योग, औदारिक काय योग, औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रियक काययोग, वैक्रियिक मिश्र काययोग और कार्मण काययोग। कार्मण काययोग अन्तरगात में वर्तमान रहने वालों के होता है। औदारिकमिश्र और वैक्रियकमिश्र अपर्याप्तक के काल में होता है, शेष स्वभाव में स्थित के चार गति वाले की अपेक्षा कहे गये हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में दस योग होते हैं। औदारिकमिश्र वैक्रियिकमिश्र और कार्मण काययोग के बिना वे ही हैं। मरण के अभाव होने से वे तीन तीसरे में नहीं होते हैं। संयतासंयत, अप्रमत्त, अपूर्व

करण, आदि क्षीणकषाय तक इन सात गुण स्थानों में नौ नौ योग होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि के जो दस हैं वे ही वैक्रियक काययोग के विना नव होते है। विक्रिया ये नहीं करते हैं इसलिये वैक्रियक काययोग इन में नहीं है। एक में ग्यारह है एक प्रमत्त संयत में ग्यारह योग हैं पूर्वोक्त नव, आहारक काययोग आहारकमिश्र काययोग सहित ग्यारह होते हैं आहारक काययोग और आहारक मिश्र काययोग आहारक लब्धि सहित संयत के आहारक शरीर उत्पन्न करने वालों में प्रमत्त उत्पन्न करता है न कि अप्रमत्त अत: उस में ग्यारह होते हैं। यहां देश विरत और प्रमत्तों के किन्हीं के समुद्घात की अपेक्षा से भी वैक्रियिक काययोग सम्भव है अत: ने पुन: इस प्रकार (व्याख्यान करते हैं) सूत्र पाठ पढ़ते हैं।

पूर्व के तीनों के तेरह तेरह योग कहे गये हैं; चौथा प्रमत्तसंयत है ग्यारह वे ही हैं। वैक्रियक द्विक सहित तेरह नाना जीवों की अपेक्षा से प्रमत्तसंयत के होते हैं देशविरत और अप्रमत्त इन दोनों के सिवाय शेष पांच गुणस्थानों में पूर्वोक्त नव योग होते हैं। देशविरत और अप्रमत्तों के ग्यारह। पूर्वोक्त नव, वैक्रियक द्विक सहित ग्यारह देशविरत के होते हैं। वे ही वैक्रियक आहारक काययोग सहित ग्यारह अप्रमत्त के होते है कैसे ? क्योंकि वैक्रियक और आहारक अन्त काल में प्रमत्त, अप्रमत्त भाव को प्राप्त करता है। एक सयोगी केवली में सात सात योग हैं सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग इस प्रकार वचन भी औदारिक काययोग औदारिक मिश्र काययोग और कार्मण काययोग—

मन वचन असत्य सहित नहीं होते हैं क्योंकि छद्मस्थ अवस्था से रहित हैं औदारिक मिश्र काययोग और कार्मण काययोग समुद्घात गत के होता है औदारिक काययोग स्वस्थान में होता है; शेष सम्भव नहीं है।

अयोगी स्थान में योग नहीं है। योग रहित स्थान एक है वह अयोगी है क्योंकि मन वचन और काय योग रहित है ।।१२।।१३।।

इस प्रकार जीवस्थानों में उपयोग विधि और योग विधि बतलाई गई।

इयाणि जप्पखइओ बन्धो जेसु ठाणेसु तं भण्णइ—

चौदहवां—सूत्र

चउपच्चइओ बन्धो पढ़मे, उवरितिगे तिपच्चइओ।
मीसग बीओ, उवरिमदुगं च, देसिक्कदेसम्मि ।।१४।।

प्रथम गुणस्थानों में चार प्रत्यय से बन्ध होता है ऊपर के २-३-४ तीन गुणस्थानों में तीन प्रत्यय से बन्ध होता है पांचवे देशविरत में भी तीन प्रत्यय हैं किन्तु दूसरा प्रत्यय विरताविरत मिश्ररूप होता है। ऊपर के छठे आदि में दो प्रत्ययों से बन्ध होता है और ग्यारहवें से तीन गुणस्थानों में योग प्रत्यय से बन्ध होता है। अयोगी प्रत्यय रहित है यह आगे के सूत्र में कहेंगे।

व्याख्या—'चउपच्चइओ' त्ति चत्तारिपच्चया, तं जहा—मिच्छत्तपच्चओ, अस्संजमपच्चओ कसायपच्चओ, जोगपच्चओ इति। मिच्छत्तं सामन्नेणं एगपगारं, विभागओ अणेगविहं, एगंतमिच्छत्तं, वेणइतमिच्छत्तं, संसयमिच्छत्त मूढमिच्छत्तं, विवरीय मिच्छत्तमिति। अहवा किरियावाओ, अकिरियावाओ, अण्णाणवाओय।

"असियसयं किरियाणं, अकिरियवाईण जाण चुलसीइ,
अण्णाणि य सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसं ।१।"

अहवा—"जावइयणय वाया तावइया चेवहोंति परसमया।
जावइया पर समया ता वइया चेव मिच्छत्ता ।।१।"

एगंतवाओ मिच्छत्तं ति एए कम्मबन्धस्सकारण भूआ। असंजमो अणेगपागरो हिंसाइ, अहवा चक्खुइंन्दिय विसयऽभिलासाइ। कसाया पणुवीसइविहा तं जहा—सोलस-कसाया, नव नोकसाया इति। जोगापंचदसप्पगारा पुव्वं वक्खाणिया। एत्थ आहारय दुगवज्जिएहिं चउहिं वि सविगप्पेहिं मिच्छद्दिट्ठीम्मि बन्धो 'उवरिमतिनं तिपच्चइंगो' त्ति उवरिमतिगं सासाणो सम्मामिच्छो अस्संजय सम्मद्दिट्ठीत्ति एएसु तिसु मिच्छत्तपच्चयवज्जिएहिं सेसतिगेहिं साविगप्पेहिं आहारगदुगवज्जिएहिं बन्धो भवइ, सव्वेवि तेसु अत्थि त्ति काउं, णवरि मिस्स कम्मइग जोगो य सम्मामिच्छे णत्थि। अणन्ताणुबन्धिणो उवरिम दुगे णत्थि। 'मीसग बिइओ उवरिमदुगं च देसेक्क देसम्मि, त्ति बिइओ पच्चओ असंजमो सो देस विरइम्मि मिस्सोअप्पडिपुण्णो, देसओ विरमणभावाओ, उवरिमदुगंणाम कसायजोगा एए दोन्निवि सविगप्पा देसविरयस्स बन्ध कारणाणि, णवरि अप्पच्चक्खाणावरण ओरालियमिस्स (वेउव्विय) वेउव्विय मिस्स-कम्मइग-आहारगदुगवज्जियाणि देसविरए एसिं उदओ त्ति काउं ।।१४।।

चार प्रत्यय हैं—वे इस प्रकार हैं। मिथ्यात्व प्रत्यय, असंयम प्रत्यय, कषाय प्रत्यय और योग प्रत्यय। मिथ्यात्व सामान्य से एक प्रकार का है विभाग की अपेक्षा अनेक प्रकार का है, जैसे एकान्त मिथ्यात्व, वैनयिक मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व अज्ञान-मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व। अथवा क्रियावाद, अक्रियावाद, वैनयिकवाद और अज्ञानवाद। "क्रियावादियों के १×४×९×५=१८० एकसौ अस्सी भेद हैं।

अक्रियावादियों के १×२×७×५=७० १×७×२=१४ ७०+१४=८४ चौरासी भेद हैं अज्ञानवादि के ९×७=६३+४=६७ हैं वैनयिक के ८×४=३२ हैं।

अथवा जितने नयवाद हैं उतने ही पर समय हैं जितने पर समय हैं उतने ही मिथ्यात्व हैं एकांतवाद मिथ्यात्व है। ये कर्म बन्ध के कारण भूत हैं। असंयम अनेक प्रकार का है हिंसा आदि, अथवा चक्षु इन्द्रिय विषय आदि अभिलाषा आदि। कषाय पच्चीस प्रकार की हैं वे इस प्रकार हैं, सोलह कषाय नव नौ कषाय। योग पन्दरह प्रकार के हैं पहले उनका व्याख्यान कर दिया है। यहां आहारक द्विक योग मिश्र बिना चारों ही निज भेदों से मिथ्या दृष्टि गुण स्थान में बन्ध होता है। उपरिम तीन गुण-स्थानों में अर्थात् सासादन, मिश्र, और असंयतसम्यग्दृष्टि में मिथ्यात्व प्रत्यय के बिना शेष तीन प्रत्ययों के भेदों से आहारक द्विक प्रत्यय के बिना बन्ध होता है क्योंकि सब उन में हैं। इतना विशेष है कि मिश्र और कार्मण योग सम्यग्मिथ्यात्व गुण स्थान में नहीं है अनन्तानुबन्धी ऊपर के दो गुणस्थान में नहीं है। दूसरा प्रत्यय असंयम है वह देशविरत में मिश्र रूप अपरिपूर्ण होता है, क्योंकि अंश रूप से विरति भाव है ऊपर के दो प्रत्यय कषाय और योग दोनों सभेद देशविरत के बन्ध के कारण हैं किन्तु इतना विशेष है कि अप्रत्याख्यानावरण औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियक-मिश्रकार्मण आहारक और आहारक मिश्र का देश विरत में उदय नहीं है अतः इनके निमित्त से होने वाला बन्ध भी नहीं होता है ॥१४॥

पंदरहवां—गाथा—सूत्र

उवरिल्लपंचके पुण दु पच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।
सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होन्ति कम्माणं ॥१५॥

ऊपर के पांच गुणस्थानों में ६-७-८-९-१० में दो प्रत्ययों से बन्ध होता है। ऊपर के तीनों में ११-१२-१३वें में योग प्रत्यय से बन्ध होता है ये पूर्वोक्त सामान्य प्रत्यय हैं आठ प्रकार के कर्म बन्ध में निमित्त हैं।

व्याख्या—उवरिल्लपंचके पुण दु पच्चओ, त्ति पमत्ताई जाव सुहुमरागोत्ति एएसु पंचसु कसायजोग पच्चइगो बन्धो, विसेसोऽत्थ भण्णइ, पमत्तस्स कसाय संजलणा णोकसाया नव एए तेरस, जोगा पुव्वुत्ता तेरस, एएहिं बन्धो। अप्पमत्तस्सवि ते चेव, णवरि वेउव्वियमिस्स आहारयमिस्स वज्जिया एक्कारस जोगा, तेहिं बन्धो

अपुव्वकरणवि एए चेव, णवरि वे उव्वाहार दुगवज्जिया जोगा णव, कसाय तेरस, तेहिं बन्धो। अणियट्टिस्स जोगा णव, कसाया चत्तारि संजलणा, तिन्नियवेया एतेहिं बन्धो।

व्याख्या—प्रमत्तादि से सूक्ष्म सांपराय तक इन पांचों में कषाय और योग प्रत्यय से होने वाला बन्ध है, विशेषार्थ कहते हैं—प्रमत्त के कषाय, संज्वलन और नव नौ कषाय ये तेरह, योग पूर्वोक्त तेरह इन से बन्ध होता है और अप्रमत्त के भी वे ही प्रत्यय हैं इतना विशेष है कि वैक्रियिक मिश्र और आहारक मिश्र के बिना ग्यारह योग होते हैं उनसे बन्ध होता है। अपूर्व गुणस्थान में भी वे ही बन्ध के कारण हैं किन्तु इतना विशेष है कि वैक्रियिक और आहारक, द्विक के बिना नौ योग होते हैं, कषाय तेरह हैं उन से बन्ध होता है। अनिवृत्तिकरण के योग नव है कषाय चार संज्वलन और तीन वेद इन से बन्ध होता है।

सूक्ष्मरागस्स जोगा णव, लोभ संजलणो य, एएहिं बन्धा। 'जोग पच्चओ तिण्हं' ति उवसन्त-खीण-कसाय-सजोगिकेवलिणं एएसिं तिण्हिं जोगपच्चइओ बंधो। उवसंतखीणमोहाणं णव णव जोग तेहिं बन्धो। सजोगि केवलिस्स, सत्त जोगा, तक्कारणो बन्धो। 'सामन्न-पच्चया खलु अट्ठण्हं होन्ति कम्माणं' त्ति एए भणिया अट्ठण्हं कम्माणं सामन्नपच्चया अविसेसपच्चया इत्यर्थः पण पन्न पन्न तिय-छहियचत्त गुणचत्त छक्क चउसहिया। दुजुया य वीस सोलस दस नव नव सत हेऊओ ॥१॥

सूक्ष्म सांपराय वाले के नव योग होते हैं और लोभ संज्वलन इन के द्वारा बन्ध होता है। उपशांत क्षीण-कषाय सयोग केवली इन के तीनों के योग प्रत्यय से होने वाला बन्ध है उपशांत और क्षीणमोह के नव नव योग हैं उनसे बन्ध होता है। सयोगकेवली के सात योग हैं उन के कारण बन्ध होता है। ये सामान्य प्रत्यय हैं। आठ प्रकार के कर्मों के कर्म के बन्ध के हेतु ये सामान्य प्रत्यय अर्थात् अविशेष प्रत्यय हैं।

१ २ ३ ४ ५ ६
प्रथम गुणस्थान ५५, दूसरे इत्यादि में क्रमशः ५०, ४३ ४६-३९—२६—
७ ८ ९ १०—११—१२—१३—१४
२४-२२-१६-१०— ९ — ९ — ७ — ० प्रत्यय होते हैं।

इति सामान्य प्रत्यय समाप्त

इदाणीं विसेसपच्चयणिरुवणत्थं भन्नइ।

अब विशेष प्रत्यय का निरूपण करने के लिये कहते हैं।—

सोलहवाँ-गाथा-सूत्र

पडिणीय-अन्तराइय-उवधाए तप्पओसनिन्हवणे ।
आवरणदुगं भूओ बन्धइ अच्चासणाए च ॥१६॥

व्याख्या—'पडिणीय' त्तिणाणस्स णाणिस्स णाणसाहणस्स, पडिणीय त्तणं करेइ पडिकूलया । 'अन्तराइयं' विग्घं, 'उवघाओ' मूलाओ विणासकरणं, 'तप्पओस' त्ति मणेण तेसिं रूसणाया, 'णिण्हवणं' ति आयरिय णिण्हवणं, सत्थणिण्हवणं, वा अन्नं च णाणिसदूसणयाए, आयरियपडिणीयाए, उवज्झायपडिणीतयाए अकाल सज्झाय करणेण य कालसज्झायाकरणेण य 'आवणदुगं भूओ बन्धइ' णाणदंसणा-वरणाणि एएहिं बन्धइ, भूयो त्ति भृशं तीव्रं, 'अच्चासणाए य' त्ति हीलप्पयाए णाणं अच्चासेइ, आयरियउवज्झाए य अच्चासाएइ, पाणवहाईहिं य णाणावरणं कम्मं बन्धइ । दंसणावरणस्स विएए चेव, णवरि अलसयाए, सोविरयाए, णिद्दाबहुमन्नणायए दरिसणप्पओसेण, दरिसणणीकयाए, दरिसणन्तराइगेण दिट्ठीसंदूसणयाए चक्खु-विग्घायणयाए पाणवहाईहिं य दंसणावरणं कम्मं बन्धइ ॥१६॥

ज्ञान की ज्ञानी की और उसके साधन की प्रतिकूलता करने से, विघ्न करने से, मूल विनाश रूप उपघात से, उसके विषय में मन में रोप होने से, आचार्यादि के निन्हव छुपाने से या आसादना अवहेलना करने से ज्ञानावरण और दर्शनावरण का प्रचुर मात्रा में बन्ध करता है । इसी प्रकार दर्शनावरण के भी ये प्रत्यय हैं । और जो विशेषता है उसको व्याख्या से जानें ।

'प्रतिनीक' अर्थात् ज्ञान की, ज्ञानी की ज्ञान के साधन की प्रत्यनीकता-विरोध प्रतिकूलता से करता है । 'अन्तराय' विघ्न करता है । 'उपघात' मूल से विनाश करना, 'तप्पओस' मन से उनके विषय में रुष्ट होने से 'णिण्हवणं' आचार्य को छुपाना, शास्त्र का छुपाना या और भी ज्ञानी को दूषण लगाने से आचार्य की प्रत्यनी-कता से–विरोध से उपाध्याय के विरोध से, अकाल स्वाध्याय करने से, योग्यकाल में स्वाध्याय न करने से, ज्ञानावरण और दर्शनावरण को प्रचुर तीव्र बांधता है । 'आसादना से' आवहेलना से, ज्ञान की विराधना-अनादर करता है । आचार्य और उपाध्याय की प्रतिकूल चलने से आसादना से और प्राणिवध आदि से ज्ञानावरण कर्म को बांधता है, दर्शना वरण के भी ये ही प्रत्यय हैं इतना विशेष है कि आलस्य के द्वारा दिन में सोने से सोविरयाए निद्रा बहुमन्नाणयाए, बहुत सोने से दर्शन में प्रदोष बतलाने से, सोने में रति होने से, बहुनिद्रा से मग्न रहने से सम्यक्त्व में होने से, दोष लगाने से ।

दर्शन के प्रतिनीक निषेध होने से, दर्शन में अन्तराय डालने से, दृष्टि में दोष लगाने से चक्षु का विघात करने से और प्राणवधादि से दर्शनावरण कर्म को बांधता है ।।१६।।

सतरहवां—सूत्र

भूयाणु कम्प-वय–जोग-उज्जओ खन्ति-दाण-गुरु-भत्तो ।
बन्धइ भूओ सायं विवरीए बन्धए इयरं ।।१७।।

जीवों पर अनुकम्पा करने वाला, व्रत धारण करने वाला, योग या या समाधि में उद्यम करने वाला, क्षमा धारण करने वाला, दान देने वाला, गुरु की भक्ति करने वाला, तीव्र साता वेदनीय को बांधता है इस के विपरीत जीवों के प्रति निर्दय क्रूर हत्यारा, व्रत रहित, योग साधना रहित, संक्लेश परिणाम वाला धर्म कर्म में उद्यम रहित, दुर्ध्यानिरत, दान रहित कंजूस-कृपण गुरु भक्ति रहित, क्रोधी तीव्र असाता का बन्ध करता है ।

व्याख्या—'भूयाणु' त्ति, भूयाणुकम्पया दयालूकत्ताए, धम्माणुरागेणं, धम्मणिस्सेवणयाए, सीलव्वयपोसहोववासरतीए अकोटणयाए, तवोगुणणियमरयाणं फासुयदाणेण, बालवुड्ढतवस्सिगिलाण गाईणं वेयावच्चकरणेण, माया-पिया-धम्मा-यारियाणं च भत्तीए, सिद्धचेइयाणं पूयाए, सुहपरिणामेणं सायावेयणीयं कम्मं निव्वं बन्धइ । 'विवरीए बन्धए इयरं' ति भणिय विवरीएहिं, तं जहा णिराणु-कम्पयाए, पाहणविहडण-दमण-बन्ध परियावणयाए, अङ्गोवङ्गवेयणाइसंकिलेस-जणणयाए, सारीरमाणसदुक्खप्पायणयाए तिव्वासुभपरिणामेणं णिद्दयत्ताए, पाण वहाइहिं य असायं कम्मं बन्धइ । 'इयरं' ति असाय-वेयणीयं ।।१७।।

भूतानुकम्पा से, दयालुता से, धर्मानुराग से, धर्म के निसेवन से, शील-व्रत, प्रोषधोपवास में प्रीति होने से, अक्रोधसे, तप गुण नियम में रत रहने वालों के, प्रासुक दान से, बाल वृद्ध, तपस्वी ग्लान आदि की वैय्यावृत्य करने से, माता पिता और धर्माचार्य की भक्ति से, सिद्ध, चैत्यों की पूजा के द्वारा शुभ परिणाम से साता-वेदनीय कर्म का तीव्र बन्ध करता है । इससे विपरीत जीवों के प्रति निर्दयता, उनका सवारी वाहन, उनका खण्डन विघटन, दमन बन्धन द्वारा संतापित करने से, अङ्ग या उपाङ्ग में वेदनादि संक्लेश उत्पन्न करने के द्वारा, शारीरिक-मानसिक दुःख उत्पन्न

करने से तीव्र अशुभ परिणाम के द्वारा प्राणों के घात वगैरह पापों से असाता वेदनीय कर्म का तीव्र बन्ध करता है ॥१७॥

इयाणिं मोह-बन्धस्स कारणं,
तत्थ पढमं दंसणमोहस्स भन्नइ—

अब मोह बन्ध के कारण को कहते उस में से पहले दर्शनमोह के प्रत्यय को बतलाते हैं।

अठाहरवां-गाथा-सूत्र

अरहंत-सिद्ध-चेइय-तव-सुय-गुरु-साहु-संघ-पडणीओ।
बन्धइ दंसण मोहं अणन्त संसारिओ जेणं ॥१८॥

अरहंत, सिद्ध, चैत्य, तप, श्रुत, गुरु, साधु और संघ का अवर्णवाद करने वाला–झूठा दोष लगाने रूप निन्दा करने वाला दर्शन-मोह का बन्ध करता है—यह बन्ध प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होता है। जिससे वह अनन्त संसारी होता है।

व्याख्या—अरहन्ताणं, सिद्धाणं, चेइयाणं केवलीणं, साहूणं, साहुणीणं, धम्मस्स धम्मोवएसगस्स तवस्स सव्वन्नु भासियस्स सुत्तस्स दुवालसंगस्स,गणिपिडगस्स-सव्वभावरूपवगस्स अवन्नवाएणं, चाउव्वण्णस्स संघस्स अवण्णवाएणं, 'पडिणीओ' त्ति पडिणीओ अवन्नवाई भवइ, अन्नं च उम्मग्गदेसणाए, मग्गविपडिवत्तीए, धम्मिय-जण-संदूसणयाए, असिद्धेसु सिद्धभावणाए, सिद्धेसु असिद्धभावणाए, अदेवेसु देवभावणाए, देवेसु अदेवभावणाए, असव्वन्नुसु सव्वन्नुभावणाए, सव्वन्नुसु असव्वन्नु भावणयाए एवमाइ विवरीय भावसन्निवेसणयाए संसारपरिवड्ढण मूल कारणं बन्धइ दंसणमोहं, सम्मदंसणघाइ-मिच्छत्त मित्यर्थः। अणन्त संसारिओ जेणं तिजेणं अणन्त-संसारिको भवइ ॥१८॥

अरहंत, सिद्ध, चैत्य, केवली, साधु, आर्या, धर्म, धर्मोपदेशक, तप, सर्वज्ञ भाषित श्रुत का द्वादशांग का, आचार्य पिटकका का, सम्पूर्ण पदार्थ उपदेशक का अवर्णवाद करने से तथा चार प्रकार के संघ के अवर्णवाद से प्रत्यनीक अवर्णवादी होती है और उन्मार्ग की देशना से, मार्ग में विप्रतिपत्ति से धार्मिक जन को दूषण लगाने से, असिद्धों में सिद्ध भावना से, सिद्धो में असिद्ध भावना से, अदेवों में देव

भावना से, प्रदेवों में देव भावना से,देवों में अदेव भावना से, असर्वज्ञों में सर्वज्ञ भावना से, सर्वज्ञ में असर्वज्ञ भावना से इत्यादि विपरीत भाव सन्निवेशन से संसारपरिवर्तन मूल कारण दर्शन मोह को बांधता है। सम्यग्दर्शन घाति मिथ्यात्व है यह उस का तात्पर्य है जिससे वह बंधक अनंत संसारी होता है ॥१८॥ यदि वह दर्शन मोह नहीं रहता है तो अनंत संसारी नहीं हो सकता है।

इयाणिं चरित्त मोहकारणं भन्नइ
अब चारित्र मोह के कारण को कहते है

उन्नीसवां १९ गाथा सूत्र

तिव्वकसाओ बहुमोह परिणओ रागदोस संजुत्तो।
बन्धइ चरित्तमोह दुविहंपि चरित्तगुण घाई ॥१९॥

तीव्र कषाय करने वाला, बहु मोह परिणत बहु राग द्वेष संयुक्त, कषाय वेदनीय और नो कषाय वेदनीय का तीव्र बन्ध करता है। जो दोनों प्रकार के चरित्र गुण का घातक है।

व्याख्या—तिव्व कोहपरिणामो कोहवेयणीय कम्मं बन्धइ। तीव्र क्रोध परिणाम वाला क्रोध वेदनीय कर्म का बन्ध करता है। एवंमाणमायालोभराग दोसा य वसव्वा। इस प्रकार मान माया, लोभ, राग और द्वेष रूप तीव्र परिणाम वाले मान मायादिक का तीव्र बन्ध करते हैं। 'बहुमोहपरिणओ' त्ति तिव्वमोह परिणामो मोहवेयणीयं कम्मं बन्धइ। विषयगृद्ध इत्यर्थः।' तीव्र मोह परिणाम मोह वेदनीय कर्म को बांधता है अर्थात् विषय मे गृद्ध मोह वेदनीय का तीव्र बंध करता है। तिव्वरागो, अइमाणो, ईसालुको, अलियबाई, वङ्को, वङ्कसमायारो, सढो, परदार रइपियो य इत्थिवेयणियं कम्मं बन्धइ। तीव्र रागी; अतिमानी, ईर्ष्यालु झूंठ बोलने वाला, वक्र, वक्र-समाचार युक्त शठ वंचक और परदाररतिप्रिय स्त्री वेदनीय कर्म को बंधता है। इसका बन्ध दूसरे गुणस्थान के ऊपर नहीं होता है। क्यूं कि स्त्री वेद दूसरे सासादन तक ही बंधता है।

उज्जु, उज्जुसमाचारो, मन्द कोहो, मिउ मद्दवसम्पन्नो, सदाररइप्पिओ, अणीसालुको पुरिसवेयणीयं कम्मं बन्धइ।

जो सरल है, ऋजु दश प्रकार की संक्षिप्त समाचारी से युक्त है, मन्द क्रोधी है मृदु-मार्दव सम्पन्न है, स्वदार प्रिय है और अनिर्ष्यालु है वह, पुरुषवेदनीय कर्म को बांधता है।

तिव्वकोहो, पिसुणो, पसूणं वह-छेयण फोडन णिरओ, इत्थि पुरिसेसु अणंग सेवण सीलो, सीलव्वय-गुणधारीसु, पासण्ड पविट्ठेसु य वभिचारकारी, तिव्वविसय सेवी य, णपुंसगवेयणीयं कम्मं बन्धइ।

जो तीव्र क्रोध करने वाला है, पिशुन है पशुओं का वध, छेद स्फोटन करने में रत है स्त्री और पुरुषों के अनङ्गों का सेवन शील है जो शील या व्रत या गुण धारियों में और पाखण्ड प्रविष्टों में व्यभिचार करने वाला है और तीव्र विषय सेवी है वह नपुंसक वेद का बंध करता है।

(नपुंसक वेदका बंध प्रथम गुण स्थान में होता है।

हसिणो, परिहास उल्लाओ, कन्दप्पिओ, हसावण सीलो य हास वेयणीयं कम्मं बन्धइ

जो हंसता रहता है, जो परिहास के साथ ऊंचा बोलता है अट्टहास करता है। हास्य मिश्रित काम वचन चेष्टादि करता है और दूसरों को हंसाते रहने की आदत वाला आत्मा हासवेदनीय कर्म को बांधता है।

सोयण-सोयावण सीलो, परदुक्खवसणसोगेसु य अभिणन्दगो, सोगवेयणीयं कम्मं बन्धइ।

शोक युक्त जो स्वतः शोक करता है दूसरों को चिंता ग्रस्त बनाने की आदत वाला है दूसरे के दुक्ख आपत्तियों और शोक में आदर भाव रखने वाला है वह शोक वेदनीय कर्म को बांधता है।

विविहपरिकीलणाहिं रमणरमावण सीलो, अदुक्खुपायणो य रइवेयणीयं कम्मं बन्धइ।

जो नाना प्रकार की क्रीडाओं से रमने-खेलने लाड़ प्यार करने कराने रमाने की आदत वाला है और दूसरों को दुःख उत्पन्न नहीं करता सुख उत्पन्न करने वाला है वह रतिवेदनी कर्म का बन्ध करता है।

परस्स रइविग्घकरणयाए, पावजणसंसग्गी रइए य अरइवेयणीयं कम्मं बन्धइ।

दूसरे की रति में विग्घ करने से और पापीजनों की संगति में रति करने से अरति वेदनीय कर्म को बांधता है।

सयं भयन्तो परस्स य भय उव्वेयं जणयन्तो भयवेयणीयं कम्मं बन्धइ।

स्वतः भयभीत है और दूसरे को भी भय उद्वेग उत्पन्न करता है वह भय वेदनीय कर्म को बांधता है।

साहुजण दुगुच्छए, परस्स दुगुच्छमुप्पायन्तो, परपरिवायणसीलो दुगुच्छा वेयणीयं कम्मं बन्धइ।

साधुजनों से ग्लानि करने से, दूसरों को ग्लानि उत्पन्न करने वाला, दूसरे का अपवाद करने की आदत वाला दुगुच्छा (जुगुप्सा) वेदनीय कर्म को बांधता है।

पत्तेयं पत्तेयं पयडीओ अहिकिच्च बन्धो भणिओ। इयाणिं समन्नेणं भण्णइ-सीलव्वय संपन्ने चरणट्ठे धम्मगुणरागिणे सव्वजगवच्छले समणे गरहन्तो, तवसंजम रयाणं परम धम्मिकाणं धम्माभिमुहाणं च धम्म विग्घं करेन्तों, जहासीलव्वय-कलियाण देसवियाणं विरइविग्घ करेन्तो, महुमज्ज मंस विरयाणं को एत्थ दोसोत्ति अविरतिं दरिसन्तो, चरित्तसंदूसणाए अचरित्त संदेसणाए य परस्स कसाएणोकसाए य संजणन्तो बन्धइ चरित्तमोहं कम्मं।

प्रत्येक प्रत्येक प्रकृतियों को अधिकृत करके–मुख्य करके बन्ध कहा गया। अब सामान्य रूप से कहते हैं।

जो शील और व्रत से सम्पन्न है चरित्र में स्थित है धर्म में अनुराग रखने वाले है सर्वजगत् वत्सल श्रमण के प्रति गर्हा करने से, उनके साथ वचन से दुर्व्यवहार करने वाला तीव्र चारित्र मोह का बन्ध करता है। जो तप संयम में रत है परम धार्मिक हैं और धर्म के अभिमुख हैं उनके धर्म पालन में विघ्न करने वाला तीव्र चारित्र मोह को बांधता है।

अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम मध्यम जघन्य भेद से सामायिक प्रोषध आदि शील और व्रत से जो युक्त देशविरत हैं उनके व्रत में विघ्न करने वाले तीव्र चरित्र मोह का बन्ध करते हैं। यह तीव्र बन्ध भी प्रथम गुणस्थान में हो जाता है।

जो मधु मद्य और मांस के त्यागी या उनसे विरक्त हैं उन के प्रति यह कहना कि इनमें—'मधु आदिक में क्या दोष है' इस प्रकार अविरति को दिखाने वाला तीव्र चरित्र मोह का बन्ध करता है।

चारित्र में दूषण बताने से, दूषित करने से अचारित्र का उपदेश देने से—व्रत नहीं लेने का उपदेश देने से और दूसरे के कषाय और नो कषाय उत्पन्न करने से—उसके उत्पन्न करने की भावना से परिणाम से चारित्र मोह का तीव्र बन्ध होता है।

'दुविहंपि चरित्तगुणघाइं' त्ति कसाय णोकसाय वेयणीयं दुविहंपि चरित्तगुणं घातति त्ति चरित्तगुण घाई तं चरित्तगुण घाई ॥१६॥ कषाय और नो कषाय वेदनीय दोनों ही चारित्र गुण का घात करती हैं अतः चारित्र घाति प्रकृतियां हैं।

इयाणिमाउगस्स पच्चओ भण्णइ

आयु का प्रत्यय कहा जाता है ।

बीसवां २० गाथा सूत्र

मिच्छद्दिट्ठी महारम्भपरिग्गहो तिव्वलोभनिस्सीलो
निरयाउयं निबंधइ पावमई रुद्दपरिणामो ॥२०॥

मिथ्यादृष्टि जो कि महा आरम्भ और परिग्रह वाला है तीव्र लोभी है निःशील है नरक आयु का पापमति रुद्रपरिणामवाला बंध करता है ।

व्याख्या—'मिच्छद्दिट्ठी' धम्मस्स परम्मुहो, 'महारम्भपरिग्गहो' त्ति जम्मि आरम्भे बहूणं जीवाणं घाओभवइ सो महारम्भो, जम्हि परिग्गहे बहूणं जीवाणं घाओ भवइ सो महापरिग्गहो, 'तिव्वलोभ निस्सीलो' त्ति णिम्मेरपच्चक्खाणपोसहोववासो, अग्गिरिव सव्वभक्खी णिरयाउगं कम्मं बन्धइ । 'पावमइ रुद्द परिणामो' त्ति पावमई असुभचित्तो पत्थर समाणचित्तो त्ति । रोद्द परिणामो सव्वकालं मारणाइ चित्तो ॥२०॥

इयाणितिरिया उगस्स भण्णइ

'मिथ्यादृष्टि' धर्म के पराङ्मुख, महारम्भ परिग्रह वाला जिस आरम्भ में बहुजीवों का (संकल्पी) घात होता है वह महाआरम्भ है जिस परिग्रह में बहुत जीवों घात होता है वह महापरिग्रह है जो 'तीव्र लोभी निस्सील' है जो नियम से कभी भी दान, त्याग आखड़ी या आगामीत्याग प्रत्याख्यान नहीं करता है वह (कृपण) अत्यन्त लोभी है,कभी भी जो नियम रूप में या नियम होने पर उपवास उत्तम मध्यम या जघन्य रूप से नहीं करता है अग्नि के समान जो सर्वभक्षी है जिसे भक्ष्याभक्ष्य का कोई विवेक नहीं है वह नरक आयु कर्म को बांधता है 'जो पापमति रौद्र परिणाम वाला है । पापमति अर्थात्—अशुभ चित्त वाला है पाषाण के समान कठोर हृदय वाला है जिस का हृदय कभी द्रवित नहीं होता है । रौद्र परिणाम वाला है सर्वदा जीवों के मारने के परिणाम वाला है वह नरक आयु का बन्ध करता है ।

अब तिर्यंच आयु के प्रत्यय को बतलाई जाती है ।

२१ वां गाथा सूत्र

उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ, गूढहिययमाइल्लो
सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बन्धए जीवो ॥२१॥

व्याख्या—'उम्मग्गदेसओ' त्ति उम्मग्गं पन्नवेइ, मग्गट्ठियाणं णासणं करेइ, 'गूढहियय माईल्लो' त्ति मणसा गूढो, किरियाए माइल्लो, सढशीलो णाम वाया मधुरो' 'ससल्लो' त्ति वयसीलेसु अइयारसहिओ मायावी णालोए ति, पुढवि भेय सरिसरोसो, अप्पारम्भो, तिरियाउयं कम्म बन्धइ ॥२१॥

जो उन्मार्ग का उपदेश देता है, मार्ग का नाश करने वाला है, गूढ़ हृदय वाला है जिसका मन मैला मायावी है षष्ठशील वंचनाशील प्रतिमूढ़ स्वभाव वाला और सशल्य है तिर्यंच आयु कर्म को बांधता है ॥२१॥ जो खोटा मार्ग बतलाता है मार्ग में चलने वालों का नाश करता है जो मन से गूढ है क्रियाओं में मायावी है, शट स्वभाव मूढ़, ठग, कपटी, झूठ स्वभाव वाला है मात्र वाचा से मधुर है 'समल्य' व्रत और शील में अतिचार लगने पर मायावी होने से आलोचना नहीं करता पृथ्वी भेद के सदृश रोष वाला, अल्पारम्भ युक्त है तो भी तिर्यंच आयु बांधता है।

इयाणि मणुआउगस्स भण्णइ

अब मनुष्य आयु का प्रत्यय कहा जाता है।

२२ वां गाथा सूत्र

पयईअ तणु कसायो दाणरओ सील संजम विहूणो
मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं बन्धए जीवो ॥२२॥

व्याख्या—पयईअ तणु कसाओ 'त्ति पगईए अप्पकसाओ पगईए भद्दओ, पगईए विणीओ, जहिं तहिं वा दाणरओ, वालुक-राइ-सरिसरोसो, सील संजम रहिओ, 'मज्झिम गुणेहि जुत्तो' त्ति णाइसंकिलिट्ठो, ण विसुद्धो, उज्जु उज्जुकम्म समाचारो, मणुयाउगं कम्मं बन्धइ ॥२२॥

प्रकृति से अल्प कषाय [वाला] है स्वभाव से भद्र और विनय शील है, जहां तहां जब तक (पात्र) दानरत है, जो बालुका-राजि-लीक के समान रोष वाला है, शील और संयम से रहित है, मध्यम गुणों से युक्त है न अति संक्लिष्ट है न अति

विशुद्ध जो सरल कर्म-क्रिया रूप समाचार वाला है मनुष्य आयु रूप कर्म को बांधता है ।।२२।।

इयाणिं देवाउअस्स पच्चओ भण्णइ
अब देवायु का प्रत्यय कहा जाता है ।

अणुव्वय महव्वएहिंय बालतवाऽका मनिज्जराए य
देवाउयं निबन्धइ सम्मद्दिट्ठीउ जो जीवो ।।२३।।

व्याख्या—'अणुव्वय महव्वयेहिं' त्ति अणुव्वय गहणेणं पंचणुव्वयधरो, सत्त सिक्खाणिरओ सावगो । महव्वय गहणेण छज्जीवनिकाय संजमरओ, तव-णियम-बम्भचारी, सराग संजओ । 'बाल तव' त्ति अणहिगयजीवाजीवा, अणुवलद्ध सब्भावा, अन्नाण कयसंजमा, मिच्छद्दिट्ठिणो गहिया । 'अकामणिज्जराए' य त्ति अकाम तण्हाए, अकामच्छुहाए, अकाम बंभचेरेण, अकाम-सेयजल्लपरियावणयाए, चारग णिरोह बन्धणाईया, दीहकाल रोगिणोय, असंकिलिट्ठा, उदगराइसरिसरोसा, तरुवर सिहरणिवाइणो अणसणजल जलण पवेसिणो य गहिया, 'देवाउगं णिबन्धन्ति एए सव्वे देवाउगं कम्मं बन्धन्ति । 'सम्मद्दिट्ठी जो जीवो' त्ति तिरिय मणुया अविराहिय सम्मदंसणाअविरयावि देवाउगं णिबन्धति ।।२३।।

अणुव्रत और महव्रातों से अज्ञान तपसे, और अकाम निर्जरा से जीव देवायु को बांधता है । और सम्यग्दृष्टि विशेष प्रकार से बांधे तो सौधर्मादिक की आयु का बन्ध करता हैं ।।२३।।

पांच अणुव्रत धारण करने वाला, सात शिक्षाव्रत में निरत श्रावक, षट्निकाय के जीवों की रक्षा में निरत महाव्रती, तप नियम और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला सराग संयत, 'बाल तप' जीव अजीवों के सच्चे ज्ञान से रहित, यथार्थ वस्तु स्वरूप को जिनने नहीं समझा है अज्ञान कृत संयत वाले, मिथ्यादृष्टियों का ग्रहण किया है । अकाम निर्जरा से अकाम तृषा सहन, अकाम क्षुधासहन, अकाम-बिना व्रत के ब्रह्मचर्य के द्वारा, शरीर पर अकाम-स्वेद-जल परियापन से, धारण से, चारक कोट्टपालादि के द्वारा निरोध, बन्धनादिक शांति से, सहने से, और दीर्घकाल रोगी होकर भी असंक्लिष्ट उदक-राजि-सदृश रोष वाले, धर्म के नाम पर तरुवर और शिखर से पड़ने वाले, अनशन जल-ज्वला में प्रवेश करने वाले भी ग्रहण किये गये हैं ये (असंक्लेश परिणाम से) देवायु के कर्म को बांधते हैं । जो तिर्यन्च और मनुष्य सम्यग्दर्शन की विराधना रहित हैं वे अविरत हैं तो भी देवायु को बांधते हैं । देव सम्यग्दृष्टि हो तो वह मनुष्य आयु से बांधता है ।

इयाणि णामस्स पच्चया भण्णन्ति

२३ वां गाथा सूत्र

मण-वयण-कायवंको माइल्लो गारवेहिं पडिबद्धो
असुहं बन्धइ कम्मं तप्पडिवक्खेहिं सुहनामं ।।२४।।

अब नाम के प्रत्यय बतलाते हैं।

जो मन वचन और काय से वक्र है मायावी-ठग गारव से प्रतिबद्ध है अशुभ नाम का बंध करता है उससे प्रतिपक्ष रूप मन वचन और काय की सरलता, ऋजु परिणाम वाला है, गारव से रहित है वह शुभ नाम को बांधता है।

व्याख्या—'मण' त्ति मनोवाक्काएहिं. वंको, माई तिहिं गारवेहिं पडिबद्धो, तं जहा—', वंकावंकसमायारा माइल्ला नियडि कुडिल, कूडतल कूडमाणा, साइ-जोगिणो दव्वाणं ।।१।। अवन्नाणं च वन्नकरणेणं वन्नवन्ताणं अवन्न करणेणं, अगंधाणं गंधकरणेण परवंचसीलयाए, सुवन्न मणिरजतादीणं पगइविउव्वणाए, ववहार कइणाईसु विसंवायणसीलयाए परेसिं अंगोवंगविणासणाराए परदेहविरूव करणेणं परासूययाए, पाणिवआईहिं य असुभंणामं बन्धइ।

'तप्पडि वक्खेहिं सुह णामं' त्ति तव्विवरीएहिं गुणेहिं जुत्तो उज्जुओ अविसं वायणसीलोय सुहणामं बन्धइ ।।२४।।

जो मन वचन और काय से वक्र माई, तीन गारवों से प्रतिबद्ध है, वह इस प्रकार है—जो वक्र हैं वक्र समाचार वाले है मायावी हैं ठगने-निकृति में कुटिल हैं कूटतुला कूटमान, द्रव्यों के साथ मिलावट करने वाले हैं ।।१।।' अवर्ण को वर्णवाले करके, वर्णवाले को अवर्णवाले करने के द्वारा, गंधरहित गंध को सहित करके दूसरे के ठगने में तत्पर स्वभाव होने से सुवर्ण मणि चांदी आदि की प्रकृति बदलकर, लेन देन आता है व्यवहार में विसंवाद शीलता से, दूसरे के अंग उपांग के विनाश करने से, दूसरे के शरीर को विरूप विडरूप करने से, दूसरे से असूया या ईर्ष्या करने से और प्राणियों के वधादि के द्वारा अशुभनाम कर्म को बांधता है। उसके विपरीत गुणों के द्वारा, सरल, और अविसंवादनशील शुभनाम कर्म का बन्ध करता है।

इयाणि गोयस्स पच्चया भण्णन्ति

२४ वां गाथा सूत्र

अरहंता इसु भत्ती, सुत्तरुई पयणुमाण-गुणपेही।
बन्धइ उच्चागोयं विवरीए बन्धइ इयरं ।।२५।।

अब गोत्र के प्रत्यय कहे जाते हैं 'अरहन्ताइसु' त्ति अरहंत भत्तीए, सिद्ध भत्तीए, गुरुमहत्तराणं भत्तीए, पवयण भत्तीए य जुत्तो, सुतरुई, सुब्वन्नु भासियं सिद्धंतं पढ़इ पढ़ावेइय, चिन्तेइ य,वक्खाणेइ त्ति । अहवा सुत्तं वुत्तमत्थं तहा सद्दहइ । 'पयणुमाणो' त्ति जाईए कुलेण वा रूवेण वा, बलसुय आणा इस्सरियतवे वा जुत्तो वि ण मज्जई, ण परं णिन्दइ, ण परं खिसइ, ण परं हीलेइ, ण परं परिवायसीलो य 'गुणपेहि' त्ति सव्वेसिं गुणमेव पेक्खइ, किमहं, अन्ने बहवे गुणाहिया सन्तीत्ति ण माणमब्विओ हवइ, गुणाहिकेसु णीयावत्ती कुसलो 'बन्धइ उच्चागोयं' ति एवं गुण संपज्जुत्तो उच्चागोयं कम्मं बन्धइ । विवरीए बन्धइ णीयन्ति अरहन्ताइसु भत्तो एव-माइ भणिय विवरीएहिं गुणेहिं जुत्तो णीयागोयं बन्धइ ॥२५॥

२५ वां गाथा सूत्र

अरहंतादिको में जो अरहंत भक्ति, सिद्ध भक्ति, चैत्य भक्ति गुरुमत्तरों की भक्ति और प्रवचन भक्ति में उपयुक्त है, 'सूत्र में अभिरुचि रखता है' अर्थात् सर्वज्ञ भाषित सिद्धान्त को पढता है और पढ़ाता है चिन्तवन करता है और व्याख्यान करता है। अथवा सूत्र में कहे गये अर्थ का वैसा श्रद्धान करता है। 'पद मान से रहित' अर्थात् जाति, कुल या रूप या बल-श्रुत-आज्ञा-एश्वर्य या तप से युक्त है तो भी मद नहीं करता है, पर की निन्दा नहीं करता है, न पर पर खीजता है, न पर की अव-हेलना करता है और न पर का परिवाद करता है। 'गुणप्रेक्षी' जो सबके गुण को ही देखता है पर में तो क्या अन्य बहुत अधिक गुण को धारण करने वाले हैं' इस प्रकार मान गर्वित नहीं होता, गुणाधिकों से नम्रवृति कुशल ऐसे गुणों से युक्त उच्चगोत्र कर्म को बांधता है। इससे विपरीत अरहंतादि की भक्ति से रहित सूत्र, अरोची पदादि का गर्व करने वाला, दोष प्रेक्षी, निन्दक, नम्रता रहित नीच गोत्र को बांधता है।२५।

इयाणिमन्तराइयस्स भन्नइ

अब अन्तराय के प्रत्यय कहे जाते हैं।

२६–वां गाथा सूत्र

पाण-वहाईसु रओ जिण-पूया–मोक्खमग्गविग्घकरो ।
अज्जेइ अन्तरायं न लहइ जेणिच्छियं लाभं ॥२६॥

व्याख्या—'पाणवहाईसुरओ' त्ति पाणाइ वाएणं जाव महारम्भपरिग्गहेण जुत्तो, 'जिणपूया मोक्खमग्गाविग्घ करो' त्ति जिण पूयाए मोक्खमग्गट्ठियाणं च विग्घ-करो। अहवा साहूणं भत्तपाण उवगरण ओसह भेसजं वा दिज्जमाणं पडिसेहेइ, सव्व सत्ताणमवि दाणलाभ भोगोपरि भोग विग्घं करेइ, परस्स विरियमवहरइ, परं गला बन्ध णिरोहाईहिणिच्चेट्ठं करेइ, कण्णणास जीहछेदणाईहिं इन्दिय बल णिग्घाय करणेहिं पाण वहाईहिय अज्जेइ अन्तराइयं। ण लहइ जेणच्छियं लाभ' दाण लाभ-भोग-परिभोग-विग्घजणयं बलविरियणिग्घाय करणं च अन्तराइयं कम्मं बन्धई. जेण इच्छियं लाहं न लब्भइ ॥२६॥

—सामान्य-विसेस-पच्चया भणिया—

जो प्राण वध आदि में रत है, जिन पूजा और मोक्ष मार्ग में विघ्न करने वाला है वह अन्तराय कर्म को अर्जन करता है जिससे कि वह इच्छित लाभ को प्राप्त नहीं होता है ॥२६॥

'प्राण वधादि में रत' प्राणातिपात् से अर्थात् यावत् मात्र महारम्भ परिग्रह से युक्त, 'जिन पूजा और मोक्ष मार्ग में विघ्न करने वाला' जिन पूजा में और मोक्ष मार्ग में स्थित धार्मिकों पर विघ्न करने वाला अथवा साधुओं को भक्त, पान, उपकरण–पिछ्छ कमण्डल, शास्त्रादि औषध भैषज वस्तिकादि देते हुए को निषेध करता है सम्पूर्ण जीवों के भी दान, लाभ भोग, परिभोग में विघ्न करता है, दूसरे की शक्ति को नष्ट करता है और दूसरे को गल बन्ध श्वास निरोध आदि से निश्चेष्ट करता है—वह प्राणतिपात आदि से अन्तराय कर्म को बांधता है जिससे इच्छित को नहीं पाता। दान लाभ भोग और परिभोग में विघ्न करना और बल वीर्य का निर्घात करना अन्तराय कर्म को बांधने वाला है। जिससे इच्छित लाभादि को प्राप्त नहीं होता है। इस

—प्रकार सामान्य और विशेष प्रत्यय कहे गये—

इन प्रत्ययों को विशेष प्रकार से जानने के लिये राजवार्तिक, कर्मकाण्ड, तथा सर्वार्थसिद्धि को देखना चाहिए अथवा महाबन्ध प्रथम पुस्तक को पढ़ना चाहिए।

४ बंध-स्थान

इयाणि जेसु ठाणेसु बंधइ त्ति एयं भण्णइ' अब जिन स्थानों में बंध होता है उसी को बतलाते है:—

बंधट्ठाण चउरो तिण्णि य उदयस्स होन्ति ठाणाणि
पंच य उदीरणाए संजोगं अउ परं वोच्छं ॥

बंध स्थान चार हैं, और उदय स्थान तीन हैं और पांच उदीरणा के विषय में स्थान होते हैं इसके आगे संयोग को कहूँगा।

इन पूर्वोक्त स्थानों में से चार बंधस्थानों का कथन करने के लिए सूत्रकार २७ वें गाथा सूत्र को कहते हैं :—

२७ वां—गाथा सूत्र

छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति तिसु सत्तविहं
छव्विहमेगो, तिन्नेगबन्धगा ऽबन्धगो एगो ॥२७॥

मिश्र के बिना पहले से ७ सातवें तक छह गुणस्थानों में सात या आठ प्रकार का कर्म बांधते है ३, ८, ९ वे इन तीन गुणस्थानों में आयु के बिना सात प्रकार का एक दशवें गुणस्थान में आयु और मोह के बिना छह प्रकार का बन्ध होता है। ११, १२, १३ वें में जीव १ साता को बांधते है एक १४ वां अबन्धक है बंध नहीं करता है।

व्याख्या—'छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति' त्ति अट्ठ कम्माणि णाणावरणाईणि, छसु ठाणकेसु सत्तविहं अट्ठविह वा बन्धन्ति, मिच्छादिट्ठी सासण असजय सम्मदिट्ठी संजयासंजय प्रमत्तसंजय अपमत्त संजया य एएसु छसु ठाणेसु वट्टमाणा आउग बंध कालं मोत्तूण सेसं सव्वकालं सत्तविहं बन्धन्ति, आउग बन्धकाले ते चेव अट्ठविहं बन्धंति, सव्वे आउग बन्धन्ति ति काउं। 'तिसु य सत्तविहं' त्ति सम्मामिच्छ-दिट्ठी, अपुव्वकरणो, अणियट्टीय, आउगवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ बन्धन्ति। सम्मा-मिच्छदिट्ठी तेण भावेण ण मरइ त्ति आउगं ण बन्धन्ति, अपुव्वकरणो अणियट्टी य अच्चन्त विसुद्ध त्ति काउं, 'छव्विहमेगो' त्ति एगो सुहुमरागो आउगमोहवज्जाओ छ कम्मपगडीओ बन्धइ, बायर कसाया भावादो मोहणियं न बन्धइ त्ति। आउगस्स वुत्तं।

'छहस्थानों में सात प्रकार बांधते हैं' अर्थात् जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को छहगुणस्थानों में सात विध या आठ प्रकार से बाधते हैं। मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्त संयत और अप्रमत्तसंयत ये छह हैं इन स्थानों में वर्तमान आयु के बंध काल को छोड़कर शेष सर्वकाल सात प्रकार के कर्म को बांधते है और आयु के बन्ध के काल में वे ही आठ प्रकार का बांधते हैं क्योंकि

ये छहों आयु का बन्ध करते है। 'तीन में सात प्रकार का बंध करते हैं। सम्यग् मिथ्यादृष्टि अपूर्वकरण और अनिवृत्ति गुणस्थान वाले आयु के बिना सात कर्मों की प्रकृतियों को बांधते है। और अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण अत्यंत विशुद्ध है इसलिये आयु को नहीं बांधते हैं 'छह प्रकार का एक' अर्थात् एक सूक्ष्म राग वाला आयु सम्बन्धी और मोह को छोड़कर छह कर्म प्रकृतियों को बांधता है, बादर कषाय वाले मोहनीय को नहीं बांधतें आयु के सम्बन्ध में कह दिया गया है।

तिन्नेगविहं (बंधगा)' ति तिण्णि उवसन्त खीण सजोगि केवलि य एगविहं बन्धइ वेयणियं, सेसाणं कसाओदयाभावात् बन्धो णत्थि, सजोगिणो त्ति कांउ वेयणीयस्स बन्धो भवइ। 'अबन्धगो एगो' त्ति अजोगि केवलिस्स जोगा भावाओ बन्धो णत्थि ॥२७॥

'तीन एक विध बन्धक हैं' अर्थात् तीन उपशान्त, क्षीण और सयोग केवली एक प्रकार का वेदनी कर्म बांधते हैं शेष के कषाय के उदय का अभाव होने से बन्ध नहीं है, सयोगी हैं इसलिए वेदनीय का बन्ध होता है। 'एक अबन्धक है' अर्थात् अयोगि केवली के योग का अभाव है अतः बन्ध नहीं है।

इस प्रकार बन्धस्थान समाप्त हुआ।

तीन-उदय-स्थान

इदाणीं उदओ वुच्चइ—अब उदय को कहते हैं।

२८ वां गाथा सूत्र

सत्तट्ठविहच्छ बन्धगावि वेएन्ति अट्ठगं नियमा
एगविहग बन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति ॥२०॥

सात आठ और छह कर्मों के बन्धक भी नियम से आठ कर्मों को वेदन करते हैं। और एक विध बन्धक चार या सात कर्म का वेदन करते हैं। वा से अबन्ध का ग्रहण किया है।

पहला आठ कर्म के उदय वाला स्थान है दूसरा सात कर्मों के उदय वाला स्थान है तीसरा चार कर्मों के उदय वाला स्थान है।

व्याख्या—'सत्तट्ठविहछबन्धगावि वेयन्ति अट्ठगं णियमा' त्ति सत्तविह बन्धगा छव्विह बन्धका य सव्वे अट्ठविहं पि कम्मं वेएन्ति कम्हा ? सव्वेवि मोहस्स उदय

बट्टन्ति त्ति' काउं । एगविह बन्धगा पुण चत्तारि य सत्त वेएन्ति त्ति एकविह बन्ध का तिन्नि, तेसु उवसन्त खीणमोहा य सत्त वेएन्ति त्ति कम्हा ? मोहस्स उदयाभावाओ तब्भावपरिणामोत्ति काउं । सजोगि केवली चत्तारि वेएइ, कम्हा ? 'घाइकम्मक्खयाओ केवली जाओ त्ति काउं' । वा शब्दात् अबन्ध काबि य चत्तारि वेएन्ति ॥२८॥

'सात आठ और छह के बन्धक भी नियम से आठ को वेदन करते हैं' अर्थात् सात प्रकार बन्धक आठ प्रकार बन्धक और छह प्रकार बन्धक सब आठ प्रकार कर्म को वेदन करते हैं क्यों ? या किस कारण ? क्योंकि वे सब मोह के उदय में वर्तमान हैं । और एक प्रकार के बन्धक चार या सात का बन्धन करते हैं' त्ति एक विह बन्ध का तिन्नि, तेसु उवसन्त खीण मोहा एक प्रकार बन्धक तीन हैं उनमें उपशान्त और क्षीणमोह वाले सात का वेदन करते हैं । किस कारण ? क्योंकि उनके मोह के उदय का अभाव है । 'तद्भाव परिणामो त्ति' काउं क्योंकि तद्भावः परिणामः' यह गृद्धपिच्छाचार्य का भी वचन है वस्तु का उस पर्याय रूप में परिणत होना परिणाम है इस अपेक्षा वह उदय रूप मोह इनमें नहीं है । सयोग केवली चार का वेदन करता है किस कारण ? क्योंकि घाति कर्म के क्षय से केवली हुआ है । इसलिये । 'वा' या शब्द से अबन्धक भी चार का वेदन करते हैं ।

३ उदय स्थान समाप्त

पांच उदीरणा स्थान

इदाणीं उदीरण त्ति—

अब उदीरणा स्थान बतलाये जाते हैं—

२९—वां गाथा सूत्र

मिच्छद्दिट्ठिप्पभिई अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो त्ति
अद्धावलिया सेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति ॥२९॥

मिथ्यादृष्टि वगैरह प्रमत्त संयत पर्यन्त आयुकाल की आवलीमात्र शेष रहने तक आठ कर्मों की उदीरणा करते हैं उसी तरह आयु की चरमावली में सात कर्म की ही उदीरणा करता है ।

व्याख्या—'मिच्छद्दिट्ठिप्पभई अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो' त्ति मिच्छाइ जाव पमत्त संजओ सव्वेवि अट्ठविहं उदीरन्ति, कम्हा ? तप्पाओग्गज्झव साण सहियं त्ति काउं ।

'मिथ्यादृष्टि आदि आठ की उदीरणा करते हैं, छठेगुणस्थान तक' अर्थात् मिथ्यादृष्टि से प्रमत्तसंयत तक सब आठ की उदीरणा करते हैं किस कारण ? क्योंकि तत्प्रायोग्य—अर्थात् उस उदीरणा के योग्य अध्यवसान से युक्त हैं।

'अद्धावलिया सेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति' त्ति अप्पप्पणो आउगद्धाए आवलिया सेसेसस उदीरेन्ति, कम्हा ? आउगं आवलिया गतं ण उदीरेन्ति त्ति काउं। एत्थ सम्मामिच्छदिट्ठिस्स आउगस्स आवलियपवेसाभावाओ अट्ठविहा चेव उदीरणा, आउगस्स अन्तोमुहुत्तसेसे सम्मामिच्छत्तं छड्डे इत्ति ॥२९॥

अपनी अपनी आयु के काल में आवलिका मात्र शेष रहने पर सात की ही उदीरणा करते हैं। किस कारण ? क्योंकि वे आयु की चरमावली गत होने पर उदीरणा नहीं करते हैं। यहां इतना विशेष है कि—सम्यगमिथ्यादृष्टि का आयु की चरमावली में प्रवेश का अभाव है अतः उसके आठ ही की उदीरणा तीसरे में सर्वत्र होती है। क्योंकि आयु के अन्तर—मुहूर्त शेष रहने (के पहले ही) पर सम्यग-मिथ्यात्व गुणस्थान को जीव छोड़ देता है।

तीसवां ३० गाथा सूत्र

बेयणियाऊवज्जे छकम्म उदीरयन्ति चत्तारि
अद्धावलिया सेसे सुहुमो उदीरेइ पञ्चेव ॥३०॥

चार गुणस्थान वाले वेदनीय और आयु के बिना छह की उदीरणा करते हैं। सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान वाला अपने काल में आवलिका मात्र शेष रहने पर पांच की ही उदीरणा करता है।

व्याख्या—'वेयणीयाउग' त्ति वेयणीयं आउगं च मोत्तूणं सेसाणि छकम्माणि ताणि–चत्तारि गुणा–उदीरन्ति, अप्पमत्त अपुव्वकरण अणियट्टि सुहुमरागाय, विसुद्धत्वात् वेयणी आउगाणं उदीरणा णत्थि त्ति, तथा योगज्झवसाणाभावात् 'अद्धा वलिया सेसे सुहुमो उदीरेइ पञ्चेव' त्ति सुहुमसंपराइ गद्धाए आवलिया सेसे तहेव मोहवज्जाणि कम्माणि पञ्च उदीरेन्ति, कम्हा ? मोहणिज्जं आवलिकापविट्ठं ण उदीरेति त्ति काउं ॥३०॥

(३) ६ की उ० का स्थान	(४) पांच की उदीरणा का स्थान
७ वें से १०	दशवें की चरमावली में मोहवर्जित
वेदया आयुविन्त	११ वे में चरमावली बिना १२ वेमें

वेदनीय और आयु को छोड़ कर शेष वे छह कर्म ७—८—९—१० चार गुणस्थान वाले उदीरणा करते हैं । अप्रमत्त, अपूर्वकरण अनिवृत्ति और सूक्ष्म साम्पाराय ये चार गुण स्थान हैं ये विशुद्ध होने के कारण वेदनीय और आयु कर्म उदीरणा रहित हैं । क्योंकि तत् प्रायोग्य अध्यवसाय का उनके अभाव है । 'सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान के काल में जब आवलि का मात्र काल शेष रहता है उसी प्रकार मोह के बिना पांच कर्मों की वे उदीरणा करते हैं । किस कारण क्योंकि मोहनीय की चरम आवलि में प्रविष्ट होने पर वह उदीरणा नहीं करता है ।

(५) दो की नाम गोत्र की उदीरणा का स्थान
१२ वें में चरमावली काल में
१३ वें से दो की
१४ वें उदीरणा किसी की नहीं हैं ।

३१ वां गाथा सूत्र

वेयणियाउयमोहे वज्ज उदीरेन्ति दोन्नि पंचेव ।
अद्धावलिया सेसे नामं गोयं च अकसाई ॥३१॥

व्याख्या—'वेयणियाउग' त्ति वेयणीयाउगमोहवज्जाणि पञ्च, दोण्णि' त्ति उवसन्त खीण कसाया उदीरेन्ति मोहस्स उदओ णत्थि (त्तिकाउं) अद्धावलिका सेसे णामं गोयं च अकसाइ त्ति खीण कसायद्धाए आवलिका सेसे णामं गोयं च खीण कसाओ उदीरेइ । कम्हा ? णाण-दंसणावरणन्तराइगाणि आवलिगा पविट्ठाणि ण उदीरेन्ति त्ति काउं ॥३१॥

अकषाई जीव वेदनीय, आयु और मोह को छोड़कर पांच ज्ञा. द. ना. गो. की उदीरणा करता है किन्तु मोह के उदय से रहित अकषायी क्षीण मोह अपने गुण स्थान के चरमावली काल में (१२ वें गुण स्थान में) नाम और गोत्र दो कर्मों की उदीरणा करता है । किस कारण ? क्योंकि बारहवें की चरमावलिका में प्रविष्ट ज्ञानावरण, दर्शनावरण, और अन्तराय की वे उदीरणा नहीं करते हैं ।

३२ वां गाथा सूत्र

उईरेइ नामगोए छक्कम्म विवज्जिया सजोगीय ।
वट्टन्तो य अजोगी न किञ्चि कम्मं उदीरेइ ।।३२।।

छह कर्म के बिना सयोग केवली नाम और गोत्र दो की उदीरणा करता है और अयोगी रहते हुए किसी भी कर्म की उदीरणा नही करता है ।।३२।।

व्याख्या—उदीरेइ णामगोए छक्ककम्मविवज्जिया सजोगी त्ति सजोग केवली णामगोत्ताणि चेव उदीरेइ, आउगवेयणिज्जाण उदीरणा भावाओ सेसाणं चउण्हं उदयाभावात् ।' वट्टन्तो य अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ' जउण्हं अघाइ कम्माण उदए वट्टमाणो विणं किञ्चि कम्मं उदीरेइ, जोगाभावाओ ।।३२।।

सयोग केवलि नाम और गोत्र (की प्रकृतियों) की ही उदीरणा करता है क्यों कि आयु और वेदनीय की उदीरणा का अभाव है शेष चार घातिया के उदय का अभाव है । अयोगी रहते हुए चार अघाती कर्मों के उदय में वर्तमान किसी भी कर्म की उदीरणा नहीं करता हैं ।

उदीरणा समाप्त

३३ वाँ–गाथा–सूत्र

इयाणि तिण्हंपि संजोगो त्ति—

अब इन पूर्वोक्त तीनों का सन्निकर्ष बतलाया जाता है

गुणस्थानों में बंध उदय और उदीरणा संयोग अणुईरन्त अजोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो इरिया वहं न बन्धइ आसन्न पुरक्खडो सन्तो ३३

अयोगी केवली उदीरणा रहित है । गुण से विशाल वह अयोग केवली चार प्रकार के कर्म का वेदन करता है, ईर्यापथ कर्म को नहीं बांधता है क्योंकि आसन्न - निकट–पुरस्सर मोक्ष वाला है जो मोक्ष के निकट उन्मुख है ।।३३।।

व्याख्या—'अणुदीरन्त' त्ति उदीरणा विरहओ अयोगि केवली चउव्विहं वेएइ अघाइणि, इरियावहं ण बंधइ जोगा भावाओ जोग पच्चइगं ण बन्धइ, कम्हा ? 'आसन्नपुरक्खडो सन्तो' त्ति सन्तो–मोक्खो, सो आसन्नो त्ति काउं ।। ३३।। उदीरणा

रहित अयोग केवली चार प्रकार के अघाति कर्मों का वदन करता है, ईर्यापथ कर्म को नहीं बांधता है। किस कारण ? क्योंकि मोक्ष उसके निकट है।

३४ वां–गाथा–सूत्र

इरियावहमाउत्ता चत्तारिव सत्त चेव वेदेन्ति।
उईरन्ति दुन्नि पञ्च य संसारगयम्मि भयणिज्जा ॥३४॥

व्याख्या—'इरियावहमाउत्त' त्ति जोग-पच्चइग बन्ध सहिया तिन्निवि 'चत्तारि व सत्त चेव वेदेन्ति' त्ति उवसंत खीणमोहा य सत्त वेएन्ति, सजोगिकेवलि चत्तारि वेएइ। वा सद्दो भेय-दरिसणत्थं 'उदीरेन्ति ।दोन्नि पञ्चेव' त्ति ते चेव जोग पच्चय ॥

बन्ध सहिया दो उदीरेन्ति सजोग केवली, खीणकसाओ जाव आवलिकाव से से लाव पञ्च उदीरेन्ति आवलिका सेसे दो उदीरेइ। उवसन्तकसाओ सव्वद्धामु पंचेव उदीरेइ। 'संसार गयम्मि भयणिज्ज' त्ति उवसन्त कसाओ संसारम्मि भयणिज्जोत्ति, लद्ध बोहिलाभं भयणिज्जो विणासेइ वि ण विणासेइ वि ॥३४॥

जो ईर्यापथ बंध से सहित हैं वे चार सात का ही वेदन करते हैं उदीरणा दो या पांच की करते है उपशातकषाय वाला-संसार में बोध लाभ प्राप्त करके उसका विनाश भी करता है अतः बोध लाभ का नाश भजनीय है ।

योग प्रत्यय होने वाले बन्ध सहित तीनों में से उपशांत और क्षीण मोहवाले सात का वेदन करते हैं संयोग केवली चार का वेदन करता है वा शब्द भेद दिखाने के लिये है। वे ही योग प्रत्यय से बन्ध करने वाले सयोग केवली हों तो दो की उदीरणा करते हैं क्षीण कषायवाला आवलिका अवशेष रहने तक पांच की उदीरणा करता है उपशान्त कषायवाला अपने सर्वकाल में पांच की ही उदीरणा करता है। उपशान्तकषाय वाला संसार में भजनीय है अर्थात् बोध लाभ (रत्नत्रय) को पाकर विनाश भी करता है और विनाश नही भी करता है अतः भजनीय है ॥३४॥

३५ वाँ–गाथा–सूत्र

छप्पञ्च उदीरन्तो बन्धइ सो छव्विहं तणु कसाओ।
अट्ठविहमणुहवन्तो सुक्कज्झाणा डहइ कम्मं ॥३५॥

व्याख्या—'छप्पञ्च' त्ति 'तणुकसाओ' सुहुमरागो, सो छव्विहं बन्धइ, छव्विहं पञ्चविहं वा उदीरेइ, आवलिकावसेसे पञ्चविहं उदीरेंति, सेसकाले छव्विहं। अट्ठ-विहमणुभवन्तो सव्वद्धासु अट्ठविहं चेव वेएइ 'सुक्कज्झाणाऽहति कम्मं' त्ति मोहं णिज्जं कम्मं 'डहइ' विणासेइ 'सुकज्झाणग्गहणं किं णिमित्त' इत्तिचेत ? भण्णइ, सेढीए धम्मसुक्कज्झाणाइं सविगप्पाइं, अविरुद्धाइ, त्ति तद्बोधनार्थं तु सुक्कज्झा-णग्गहणं ।।३५।।

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान वाला छह प्रकार के कर्म को बांधता है। छह या पांच प्रकार के कर्म की उदीरणा करता है। आवलिका अवशेष काल में पांच प्रकार की उदीरणा करता है चरमावलिका से अन्यत्र वह छह प्रकार की उदीरणा करता है आठ प्रकार के कर्म का अनुभव करते हुए वह तनुकषाय सर्वकालों में आठ प्रकार का ही वेदन करता है शुक्ल ध्यान मोहनीय कर्म का विनाश करता है—दहन करता है या ढा देता है।

कितनेक आचार्य कहते हैं कि श्रेणी में धर्म शुक्ल ध्यान सभेद अविरुद्ध रूप से रह सकते हैं। उनको बोध कराने के लिये या इतना विशेष रूप से बतलाने के लिये कि (मुख्य रूप से वह) क्षपक श्रेणी की अपेक्षा से शुक्ल ध्यान ही होता है अतः शुक्ल ध्यान का ग्रहण किया है।

३६ वाँ–गाथा–सूत्र

अट्ठविहं वेयन्ता छव्विहमुईरन्ति सत्त बन्धन्ति।
अनियट्टीय नियट्टी अप्पमत्तजई य ते तिन्नि ।।३६।।

व्याख्या—'अट्ठविह वेयन्ता'त्ति अट्ठविहं पि कम्मं वेएन्ति, आउगवेयणिवज्जाणि सत्त बन्धन्ति,अणियट्टी य णियट्टी अपमत्तजई य ते तिन्नि। अप्पमत्तो अट्ठविहंपि बन्धइ तं च किं ण भणियं इतिचेत् ? भन्नइ, अप्पमत्तो आउगबन्धाढवणं ण करेइ, पमत्ते ण आढत्तं बन्धइ त्ति तस्सूयणत्थं न भणियं ।।३६।।

अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण और अप्रमत्त यति ये तीनों आठ प्रकार के कर्म का वेदन करते हैं, छह प्रकार के कर्म की उदीरणा करते हैं और सात का बन्ध करते है ।।३६।।

अप्रमत्त आठ–आठ प्रकार का भी बंध करता है उस को क्यों नहीं कहा गया है ? यदि ऐसा पूछते हो तो उसका उत्तर आचार्य समाधान करने के लिये कहते हैं

कि—'अप्रमत्त आयु के बन्ध का प्रारम्भ करने वाला नहीं है वह तो प्रमत्त के द्वारा प्रारम्भ किये गये आयु बन्ध को बांधता है इस को सूचित करने के लिए उसको नहीं कहा गया है।

३७ वां गाथा सूत्र

अवसेसट्ठ विहकरा वेयन्ति उदीरणावि अट्ठण्ह।
सत्तविहगा वि वेइन्ति अट्ठगमुईरणे भज्जा ॥३७॥

व्याख्या—'अवसेस' त्ति भणियसेसा जे अट्ठविहबन्ध का मिच्छाइ जाव पमत्तसंजओते सव्वे अट्ठविहं वेएन्ति, अट्ठविहंचेव उदीरेन्ति। कम्हा? आउग बन्ध काले आवलिका सेसं आउगं ण भवइत्ति काउं। 'सत्तविहगावि वेइन्ति अट्ठगं, त्ति ते चेव मिच्छादिट्ठिणो पमत्तन्ता सत्तविह बन्ध काले ते सव्वे अट्ठविह णियमा वेएन्ति। 'उईरणेभज्ज' त्ति उदीरणं पडुच सत्तविह वा उदीरेन्ति, अट्ठविहं वा जाव अप्पप्पणो आउगस्स आवलि का अवसेसे ताव अट्ठविह उदीरन्ति। आवलिका पविट्ठे आउगस्स सत्तविहं, आउगस्स उदीरणा भावात्। एत्थ सम्मामिच्छादिट्ठी सत्तविह बन्धगो एव णियमा अट्ठविहं वेएति उईरेइय कम्हा? तेण भावेय ण मरइत्ति काउं, भयणिज्ज सद्देण गहिओ। संजोगो भणिओ ॥३७॥

अवशेष पहले से छठे तक वे सब आठ प्रकार के कर्म का बंध करते हैं आठ का वेदन करते है और आठ कर्म की उदीरणा करते हैं किस कारण? आयु के बन्ध के काल मे आवलिका शेष रहने पर आयु का बन्ध नहीं होता है। वे ही मिथ्या दृष्टि से प्रमत्त तक के जीव सात प्रकार के बन्ध काल में वे सब आठ प्रकार का नियम से वेदन करते है। उदीरणा की अपेक्षा सात प्रकार की भी उदीरणा करते है। चरमावलिका के अवशेष रहने के पहले अपनी-अपनी आयु के काल में आठ प्रकार की उदीरणा करते हैं आयुकी चरमावलि आवलिका में प्रविष्ट होने पर सात प्रकार के कर्मों की उदीरणा करते हैं क्योंकि उस में आयु की उदीरणा का अभाव है। यहां प्रकृत में सम्यगमिथ्यादृष्टि नियम से सात का ही बन्धक है आठ प्रकार का वेदन करता और उदीरणा भी आठ की करता है। किस कारण? क्यों कि मिश्र भाव से मरण नहीं होता है। उस मिश्र भाव से मरण नहीं होता है अत: भजनीय शब्द से उसका (मिश्र का) ग्रहण किया है।

—संयोग बतला दिया गया—

बंध विधान

इयाणि बन्धविहाणो त्ति दारं पत्तं, सो चउव्विहो, पगइबन्धो, ठिदिबन्धो अणुभागबन्धो, पएसबन्धो इति ।

अब बन्ध विधान में अनुयोग द्वार प्राप्त हुआ, वह चार प्रकार का है प्रकृति बन्ध, स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध ।

तत्थ पगइबन्धो पुव्वं भन्नइ

उन चारों में से पहले प्रकृति बन्ध अनुयोग द्वार बतलाया जाता है

तं णिमित्तं मूलुत्तर पगइ समुक्कित्तणा किज्जत्ति तं जहां—

उसको बतलाने के निमित्त मूल और उत्तर प्रकृतियों की समुत्कीर्तना की जाती है वह इस प्रकार है—

३८ वाँ-३६ वां-गाथा सूत्र

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणीयं
आउय नामं गोयं तहंतरायं च पयडीओ ॥३८॥

पञ्च नव दोन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला
दोन्नि य पञ्चय भणिया पयडीओ उत्तरा चेव ॥३६॥

ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय, मोहनीय आयु, नाम, गोत्र और अंतराय ये मूल प्रकृतियां हैं ।

पांच ज्ञानावरण की नव दर्शनावरण की दो वेदनीय की, अट्ठाईस मोहनीय की, चार आयु की, बयालीस, नाम की, दो गोत्र की और पांच अंतराय की ये उत्तर प्रकृतियां ही हैं ।

व्याख्या—'णाणस्स' त्ति 'पञ्च' त्ति एयाओ दोवि गाहाओ जुगवं वक्खा-णिज्जन्ति ।

ज्ञान की पांच इत्यादिक ये दोनों ही गाथाएं साथ-साथ बतलाई जाती हैं ।

पढमियाए गाहाए मूलपगइणं णिद्देसो । बिइयाए तेसिं चेव उत्तरपगइकि-त्तणं भन्नइ । तत्थ पगइ दुविहा, मूलपगई उत्तर पगई य । तत्थ मूल पगई अट्ठविहा, णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, वेयणिज्जं मोहणिज्जं, आउगं, णामं, गोयं, अन्त-रायगमिति जीवो अणेगपज्जाय समुदओ दव्वं, तस्स णाणदंसणसुहदुक्खसद्दहणचारित्त

जीविबं देवभवादि उच्चणीयदाणलद्धियादओ अरणेगविहा धम्मा पज्जाया । तत्थ अत्थाव-बोहो णाणं अभिगमो तं आवरेइ त्ति णाणावरणीयं भास्कराभ्राद्यावरणत्, तस्सावरण भेदा पञ्च, तं जहा आभिणिबोहियणाणावरणिज्जं सुयओहिमणपज्जव केवलणाणा-वरणीयामिति तत्थाभिणि बोहियं-अभित्ति आभिमुख्ये, निः इति णियमे, बोहो-अवगमो, बोहो-अवगमो, आभिमुख्येन णियतविसयाव बोधो आभिणिबोधो, किं तं आभिमुख्यं ?

प्रथम गाथा में मूल प्रकृतियों का निर्देश है और दूसरी में उनकी ही उत्तर प्रकृतियों का निरूपण बतलाया जाता है। उनमें प्रकृति दो प्रकार की है। मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति। उनमें मूल प्रकृति आठ प्रकार की है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय। जीव अनेक पर्यायों के समुदाय रूप द्रव्य है उसके ज्ञान, दर्शन, सुख, दुख, श्रद्धान चारित्र, जीवितव्य, देवभवादि उच्च, नीच दान लब्धि आदि अनेक प्रकार के धर्म या पर्याय होते हैं। उनमें से अर्थ का अवबोध ज्ञान या अधिगम है उसको जो ढकता है वह ज्ञानावरणीय है जैसे सूर्य को बादल आदि आवरण ढकते हैं उस ज्ञानावरण के पांच भेद है वे इस प्रकार हैं आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय, श्रुत-अवधि-मन:पर्यय और केवलज्ञाना-वरणीय उनमें आभिनिबोधिक-'अभि' अर्थात् सन्मुख वर्तमान अभिमुख्यनि: अर्थात् नियम बोध अर्थात् अवगम अभिमुख्यरूप से नियत विषय का ज्ञान अभिनिबोध है-वह आभिमुख्य क्या है ?

जुत्त सन्निकरिसविसया वत्थियाणं रूवाईण मत्थाणं गहणमाभिमुख्यं,चक्खुरादि इंदियं पइ णियत विसयाणं ग्रहणमिति णियमं, अवबोहो अवगमो अभिणिबोहो एगट्ठं अभिणिबोह एव अभिणिबोहियं, पञ्चेन्दियमणोछट्ठाणं उग्गहादओ चत्तारि चत्तारि अत्था,"वंजणावग्गहो चउण्हं इंदियाणं चक्खिंदियमणो वज्जाणं" तेहिं य सुयाणुसारेण घडपडसंखाइविन्नाणं ; तंमाभिणिबोहियं अट्ठावीसइविह बत्तीसइविहं छत्तीस-ति-सय विहंवा । कहं ? उग्गहाइभेएहिं २८ उप्पादिया वेणइया कम्मिया पारिणामियबुद्धि पक्खेवे ३२, "बहु-बहुविध-क्षिप्र-निसृत संदिग्ध ध्रुवैः सेतरैर्गुणनात्" ३१६, तं आवरेइ त्ति । आभिणिबोहिणाणावरणं, चक्खिन्दियस्सेव पडलाइं ।

युक्त सन्निकर्ष विषय रूप से अवस्थित रूपादिक अर्थों का ग्रहण के 'आभि-मुख्य' है। चक्षु आदि इन्द्रिय के प्रति नियत विषयों का ग्रहण 'नियत' है। अवबोध, अवगम, अभिनिबोध ये एकार्थवाची है। अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक है। पांचों इन्द्रिय और छठे मन के अवग्रह आदि चार चार अर्थ हैं। 'व्यंजनावग्रह चार इन्द्रियों का होता हैं चक्षु और मन से वह नहीं होता है और उनके द्वारा श्रुतानुसार घट वस्त्र संख्या आदि का विज्ञान होता है। वह आभिनिबोधिक अट्ठावीस प्रकार का है।

बत्तीस प्रकार का है या तीन सौ छत्तीस प्रकार का है। कैसे ? अवग्रहादि भेद से ६×४=२४+४=२८ प्रकार का। उत्पादिक, वैनायिक, कार्मिक पारिणामिक इन चार बुद्धियों को मिलाने से बत्तीस होते है बहु, बहुविध, क्षिप्र, निसृत, संदिग्ध(ग्रनुक्त) ध्रुव और इनसे उल्टे ६ से गुणा करने पर २८×१२=३३६ प्रकार का है। उसको ढकता है वह आभिनिबोधिक ज्ञानावरण चक्षु इन्द्रिय के पटलादि की तरह है।

सुयणाणं हि आभिणिबोहिय–णाणपुव्वगं कहं ? आभिणिबोहियणाणेण तमत्थं चक्खु'राइकरण संणिज्झेणं अवयम्म तज्जाइय-देस-काल विलक्खणमणेग-पहु मुवलब्भइ त्ति सुयं।

श्रोत्र विषयं श्रुतं—

''इंदियमणो णिमित्तं, जं विन्नाणं सुयाणुसारेण
णियगत्थु त्ति समत्थं, तं भावसुयं मई सेसं ?''

इंदियमणोणिमित्तं सुयाणुसारेण अणेग भेयं जं विन्नाणमुप्पज्जइ तं सुयणाणं, अहवा संपयकालविसयं मइणाणं, ति काल विसयं सुयणाणं ति। धारणे तिकाल विसयं सुयणाणं त्ति धारणा तिकाल विसया इतिचेत् ? अणागए काले अणवबोहाओ, इंदियमणो णिमित्तं सुयक्खराणुसारेण अणेगभेदं जं विण्णाणमुहज्जइ तं सुयणाणं, तं णाणं आवरेइ त्ति सुयणाणा वरणीयं।

श्रुतज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान पूर्वक कैसे होता है ? आभिनिबोधिक ज्ञान के द्वारा उस अर्थ को चक्षु आदि इन्द्रिय (की सहायता से सानिध्य) से जानकर तत् जातीय देश काल से विलक्षण अनेक अर्थ को ग्रहण करता है वह श्रुत है। श्रोत्र विषय (भो) श्रुत है—

''इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला जो विज्ञान श्रुतानुसार रूप से (विलक्षण) अनेक अर्थ की उत्पत्ति में समर्थ है वह भाव श्रुत मतिशेष है मति पूर्वक होता है।'' इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला श्रुत के अनुसार अनेक भेद वाला जो विज्ञान उत्पन्न होता है वह श्रुतज्ञान है अथवा संप्रति काल विषय वाला मतिज्ञान है त्रिकाल विषय वाला ''धारणा में त्रिकाल विषय श्रुतज्ञान है। श्रुत ज्ञान है अतः धारणा में त्रिकाल विषय है यदि ऐसा कहो तो ? उसका समाधान यह है कि अनागत काल में उस धारणा के अवबोध नहीं हैं। इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला श्रुतानुसार अनेक भेद वाला जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह श्रुत ज्ञान है उसको आवरण करे जो वह श्रुतज्ञानावरणीय है।

तं वीसतिविहं, तं जहा—

'पज्जयक्खरपयसंघाया पडिवित्ती तह य अणुओगो
पाहुड पाहुड. पाहुडवत्थु पुव्वा य ससमासा ॥१॥"

पज्जाया वरणीयं पज्जायसमासावरणीयं एवं णेयव्वं, अहवा—

"जावन्ति अक्खराइं अक्खरसंजोय जत्तिया लोए
एवइया पडडीओ सुयणाणे होन्ति णायव्वा ॥१॥"

अवधिर्मर्यादायां तेण नाणं होहिनाणं तस्स संकवा पोग्गल दव्वेसु तस्सं-णिज्भेण दव्वखेत्तकालभावाणमुवलद्धि, अहवा अहोगय भूय पोग्गल दव्वजाणणासित मज्जायवावारो वा अवही, इंदियमणोणिरवेक्खं अणावरणीय जीवप्पएस-खओवसम-णिमित्तं साक्षाज्ज्ञेयग्राहि अवधिज्ञान, तं आवारेइ त्ति ओहिणाणावरणं, तस्स असंखेज्ज लोगागासपएस मेत्ताओ पगडीओ णाणा भेया वित्तत्तिया चेव।

वह भाव श्रुतज्ञान बीस भेद वाला है वह इस प्रकार है!—"पर्याय, अक्षर, पद संघात, प्रतिपत्ति, अनुयोग, प्राभृत प्राभृत प्राभृतवस्तु और पूर्व इनके साथ में समास जोड़ने से दश भेद और होते हैं।" पर्यायावरणीय पर्याय समासावरणीय इस प्रकार ले जाना चाहिये। अथवा—जितने अक्षर और अक्षर संयोग लोक में हैं उतनी प्रकृतियां श्रुतज्ञान के अन्दर होती हैं यह जानना चाहिए।" अवधि शब्द मर्यादा अर्थ में हैं उससे सहित ज्ञान अवधिज्ञान है उसकी साक्षी (साक्षात) पुद्गल द्रव्यों में हैं। उसकी संज्ञा के अनुसार उससे मर्यादित द्रव्य क्षेत्र काल और भावों की उपलब्धि होती है। अथवा अधोगत भूत पुद्गल का ग्रहण के आश्रित से मर्यादा में व्यापार भी अवधि है। इन्द्रिय और मन की अपेक्षा के बिना आवरण रहित जीव प्रदेश क्षयोपशम के निमित्त से होने वाला साक्षात् ज्ञेय को ग्रहण करने वाला अवधि ज्ञान है उसको जो ढके वह अवधिज्ञानावरण है उसके असंख्यातलोकाकाश प्रदेशमात्र प्रकृतियां नाना भेद वाली भी उतनी ही है।

मणपज्जवणाणं ति मणसोपज्जाया मण-पज्जाया, कारणे कार्यव्यपदेशः यथा सालयो भुज्यन्त इति, तेसु णाण मण-पज्जवणाणं। तेहव सुद्धा जीवप्पएसा परिच्छिन्दंति, ते पुग्गले णिमित्तं काउण तीयाणागय-वट्टमाणे पलिओवमासंखेज्जइ भाग पच्छा कडेपुरेक्खडे भावे जाणइ माणुसं खेत्तं वट्टमाणे, ण परओ। तं दुविहं, उज्जुमई, विउलमई य, उज्जुमई ते पोग्गले अवलम्बित्ता रज्जुरिव मालाबद्धे अत्थे जाणइ, विउलमई एक्काओ चेव बहवो पज्जाया जाणइ, तं आवरेइ त्ति मणपज्जव-णाणावरणीयं तं दुविहं, उज्जुमइमणपज्जव णाणावरणीयं, विउलमइणाणावरणीयं चेति।

'मन: पर्ययज्ञान' मन के पर्याय मनपर्याय यहां कारण में कार्य का व्यपदेश है—उपचार है। जैसे साली धान खाये जाते हैं। उन मनपर्यायों में जो ज्ञान है वह मन:पर्यय ज्ञान है। उसी प्रकार से शुद्ध जीव प्रदेश (अविभाग प्रतिच्छेद मय क्षायोपशमिक भाव) जानते हैं, वे पुद्गल को निमित्त बनाकर अतीत अनागत और वर्तमान पल्योपम के असंख्यातवें भाग पीछे और सामने रहने वाले पदार्थ को जानता है। मनुष्य क्षेत्र में वर्तमान को जानता है उससे पर में रहने वाले को नहीं जानता है। वह दो प्रकार का है, ऋजुमती और विपुलमती। ऋजुमती उन पुदगलों का अवलम्बन कर रस्सी की भांति माला बद्ध अर्थों को जानता है। और विपुलमती एक की ही बहुत सी पर्यायों को जानता है। उस ज्ञान को जो ढके वह मन:पर्यय ज्ञानावरणीय है। वह दो प्रकार है। ऋजुमती-ज्ञानावरणीय और विपुलमती-ज्ञानावरणीय। ऐसा जानना चाहिए।

केवलणाणं ति केवलं सुद्धं, जीवस्स णिस्सेसावरणक्खए, अहवा सव्व-दव्व-पज्जाय-सकला व बोधेन वा केवलं सकलं असंन खाइग केवलणाणं तं आवरेइ त्ति केवल णाणावरणीयं। तं च सव्वघाइ; सेसाणि चत्तारि वि देसघाईणि सामन्नं णाणमिति। जहा मुट्ठी पंचगुलीसु, रुक्खो वा खन्ध-साहा इसु, मोदगो वा धय-गुल-समिदादिसु। णाणावरण सभेयं भणिय।।

'केवल ज्ञान' केवल अर्थात् शुद्ध। जीव के निश्शेष आवरण के क्षय होने पर अथवा सर्व द्रव्य और उनकी संपूर्ण पर्यायों का परिपूर्ण अवबोध होने से भी केवल शुद्ध सकल—परिपूर्ण अत्यन्त क्षायिक केवल ज्ञान है उसको जो ढकता है या भकता है या आवरण करता है या आच्छादित करता है वह केवल ज्ञानावरणीय है। और वह आवरण सर्वघाती है। शेष चार प्रकृतियों भी देशघातिनी होती हैं ऐसा संक्षिप्त से जानना चाहिए। जैसे मुष्टी—मुट्ठी पांच अंगुलियों में है, वृक्ष स्कन्ध शाखा आदि कों में है; मोदक घी गुड़, समिया आदिक (मोदक के लड्डु के विशेषों) में है। अत: सामान्य कथन विशेषों में वर्तता है इस न्याय से उक्त कथन सिद्ध हुआ।

इयाणि दंसणावरणीयं, दर्शनमाव्रियतेऽनेनेति दर्शनावरणीयं, अक्षिपटलवत्। दंसणावरणीयस्स णव पयडीओ, तं जहा-णिद्दा, णिद्दाणिद्दा, पयला, पयला-पयला थिणगिद्धी पचमा। चक्खुदंसणावरणीय, अचक्खु दंसणावरणीयं ओहि दंसणावरणीयं केवल दंसणावरणीय मिति। तथ्य मूलिल्ला पंच आवरणाणि लद्धीणं, दंसणलद्धीणं उवघाए वट्टन्ति उवरिल्लां चत्तारिवि दंसणलद्धिमेव घायन्ति।

"सुहपडिबोहानिद्दा, णिद्दाणिद्दा य दुक्ख पडिबोहा पयला होइ ठियस्सवि, पयला पयलाय चंकमग्रो थिणगिद्धी उदयाग्रो महाबग्गो केसवद्धबल समिसो भवइ य उक्कोसेणं दिणचिंतिय साहगो पायं ॥१॥ (रति दिण चिन्तियत्थ करो) ॥२॥

अब दर्शनावरणीय को कहते हैं। दर्शन इसके द्वारा ढका जाता है इसलिये दर्शनावरणीय है जैसे नेत्र पटल दृष्टि को ढकता है। दर्शनावरण की नव प्रकृतियां हैं। वे इस प्रकार हैं——निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला–प्रचला स्त्यानगृद्धि पांचवीं है। चक्षुदर्शनावरणीय अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय। उसके मूल में पांच आवरण हैं वे लब्धियों में से दर्शन लब्धि के भी उपघात में वर्तती हैं। किन्तु ऊपर की चार प्रकृतियां दर्शनलब्धि को ही घातती हैं ॥३॥

"निद्रा सुख प्रति बोधवाली है, निद्रानिद्रा दुक्ख प्रतिबोध वाली है प्रचला स्थित के भी होती है और प्रचला–प्रचला चंक्रमण युक्त हे। स्त्यान गृद्धि का उदय महाबल (समृद्ध) केशव अर्द्धचक्रीबल सदृश है और उसमे उत्कृष्ट रूप से चिंतन करके साधन करने वाला प्रायः होता है। रात को दिन चिन्तित अर्थ को करता है ॥२॥

चक्खुणा दंसणं चक्खुदंसणं चक्खुरिंदिए करणं भूए जीवो चक्खुदंसणा वरणीय कम्मखग्रोवसमावेक्खा चक्खुदंसण परिणग्रो भवइ। "जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टु आगारं। अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिइ वुच्चए समए ॥१॥ चक्खि विय सामन्नथावबोहो चक्खुदंसणं। सेसिंदिय मणो सामन्नत्थावबोहो अचक्खुदंसणं ओहिणाणेण सामण्णायत्थग्गहणं होद्धिदंसणं। केवलणाणेण समन्नत्थग्गहणं केवलदंसणं। चक्खिन्दियलद्धिघाइ चक्खिन्दियावरणं, जेण चउरिन्दियाइसु तंण वट्टति। एवं सेसिंदिग्रो घाइ अचक्खुदंसणावरणींय, मणोवि जेसि न सम्भवति, तेसिं तहेव, जेसिं चउरिन्दियाइणं णत्थि, तेसि पि विज्जमाणिन्दिय संभावेण भासियव्वं।

चक्षु से दर्शन चक्षु दर्शन। चक्षु इन्द्रिय के करण भूत होने पर जीव चक्षु दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा चक्षुदर्शन रूप परिणाम होता है। "जो भावों का सामान्य ग्रहण आकार किये बिना अविशेष रूप से अर्थ में दर्शन होता है ऐसा शास्त्र में कहा जाता है। चक्षु इन्द्रिय से जो सामान्य अर्थ का अवबोध अवलोकन या आलोचन होता है वह चक्षुदर्शन है। शेष इन्द्रियों और मन से जो सामान्य अर्थ का अवबोध होता है निर्विकल्प ग्रहण होता है वह अचक्षुदर्शन है

है अवधि ज्ञान से जो सामान्य अर्थ का ग्रहण होता है वह केवल दर्शन है। चक्षु इन्द्रिय की लब्धि को घातने वाला चक्षुइन्द्रियावरण है, जिससे कि वह शेष चार इन्द्रिय आदि में नहीं बर्तता है। इस प्रकार शेष इन्द्रिय का उपघात करने वाला अचक्षुदर्शनावरणीय है। मन भी जिन के संभव नहीं है उनके उस रूप से अचक्षु दर्शन (स्पर्शनेन्द्रियादि की अपेक्षा) और जिसके ये चार इन्द्रियादि नहीं है उनके भी तीन दो एक विद्यमान इन्द्रिय की अपेक्षा अचक्षु दर्शन का वर्णन करना चाहिए।

इयाणि वेयणीयं ति, दव्वाइकम्मोदय–अभि–समेच्च अणेगभेय भिन्नं सुह-दुक्खं अप्पा वेएई अणेण त्ति वेयणीयं। तं दुविहं सायवेयणीयं, असायवेयणीयं च। सारीरमाणसं जस्सोदया सुहं वेएइ तं सातं, तव्विवरीयमसायं। इयाणि मोहणिज्ज त्ति कारण–कम्मोदयावेक्खो जीवो मुज्झइ अणेणेति मोहो। तं दुविहं, दंसण मोह-णिज्जं चरित्त मोहणिज्जं च। दंसण मोह णिज्जं बन्धन्तो एगविहं बन्धइ मिच्छत्तं चेव। सन्तकम्मं पडुच्च तिविहं तं जहा—

मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं सम्मत्तमिति। तिण्हंवि अत्थो पुव्वुत्तो।

चरित्तमोहणिज्जं दुविहं, कसाय-वेयणिज्जिं, णोकसायवेयणिज्जं च। कसाय वेयणीयं सोलसविहं। तं जहा अणंताणुबन्धि कोहमाणमायालोभा एवं अपच्चक्खाणा-वरणा,

अब वेदनीय को बतलाते हैं। द्रव्यादि कर्म के उदय से अभिसमेत—युक्त अनेक भेद भिन्न सुख और दुःख को आत्मा इस से वेदन करता है इसलिये वेदनीय है। वह दो प्रकार है सातावेदनीय और असाता वेदनीय। शारीरिक और मानसिक सुख जिसके उदय से वेदन करता है वह सातावेदनीय है और उससे विपरीत असाता वेदनीय है।

अब मोहनीय को बतलाते हैं—कारण भूत कर्म के उदय की अपेक्षा वाला जीव इससे मोहित होता है अतः यह मोह है। यह दो प्रकार का है दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोह बन्ध करते हुए एक प्रकार बांधता है और वह मिथ्यात्व ही है। सत्व की अपेक्षा मोह तीन प्रकार का है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। तीनों का अर्थ पहले बतला चुके हैं। चारित्र मोहनीय दो प्रकार की है कषाय वेदनीय और णोकषाय वेदनीय। कषाय वेदनीय सोलह प्रकार की है। अनंतानुबन्धि क्रोध मान माया लोभ, ऐसे ही अप्रत्याख्यानावरण॥

एवं पच्चक्खाणाणि, कोहसंजलणा माणसंजलणा मायासंजलणा लोभसंजलणा य। णो कसाय वेयणिज्जं णवविहं, तं जहा–पुरिस वेओ, इत्थिवेओ, णपुंसगवेओ

हासं, रई, अरई, सोगो, भयं, दुगंच्छा इति जस्स कम्मस्स उदएण मोहं गच्छइ यथा–मद्य–पीत–हृत्पूरक–भक्षित–पित्तोदय व्याकुलीकृत ज्ञानक्रियापुरुषवत् ।

दंसण—तिगस्स अत्थो पुव्वुत्तो मिच्छत्तो दिन्न पुरिसस्स मतिश्रुतावधयश्च विपर्ययं गच्छन्ति, यथा- -विष मिश्रमन्नमौषधं वा ।

चारित्रं क्रिया प्रवृत्ति लक्षणं तस्य मोहं करोतीति चारित्र मोहनीयं ।

अनन्तारिण भवारिण अणुबन्धन्ति जीवस्येति अरणन्ताणुबन्धिणो , तेसिं उदएण सम्मत्तं पि ण पडिवज्जइ, किं पुण चारित्तं पडिवन्नोवि तेसिं उदएणं दंसणं चारित्तं च चयइ, मिच्छत्तं चेव गच्छइ ।

इसी प्रकार प्रात्यख्यान की चार हैं, क्रोधसंज्वलन मान संज्वलन, माया संज्वलन और लोभसंज्वलन ।

नोकषायवेदनीय नव प्रकार है । वह इस प्रकार है । पुरुषवेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद, हास्य रति, अरति, शोक, भय, दुगुंच्छा । जिसके कि उदय से जीव मोह को प्राप्त होता है । जैसे–मद्य पीकर हृत्पुरक को खा लेने वाला पित्त के उदय से (मोह को प्राप्त) व्याकुल किये गये ज्ञान और क्रिया युक्त पुरुष की तरह मोह को प्राप्त होता है ।

दर्शन मोहत्रय का अर्थ पहले कहा है । मिथ्यात्व की उदीर्णा युक्त पुरुष के मति श्रुत और अवधि विपर्यय को प्राप्त होते हैं । जैसे कि विष मे मिश्रित अन्न या या औषध ।

चारित्र क्रिया-प्रवृत्ति क्रिया (निरोध) स्वात्म प्रवृति लक्षण वाला है उसके विपर्यय को जो करता है । वह चारित्र मोहनीय है ।

जिनसे जीव के अनंत भव (मिथ्यात्वों) को अनुबन्धते हैं इससे वे अनंतानुबन्धी हैं उनके उदय मे सम्यक्त्व भी नहीं होता है तो चारित्र कैसे ? चारित्र हो तो भी उनके उदय से दर्शन और चारित्र को वह छोड़ मिथ्यात्व(विपर्यय) को ही प्राप्त होता है ।

अप्पं पच्चक्खाणं देसविरई, तमप्पमरिण पच्चक्खाणं आवरयंति; किं पुण सव्वंति तेण अपच्चक्खाणावरणा वुच्चन्ति । तेसिं उदए वट्टमाणो देसविरइंपि ण पडिवज्जइ त्ति, पडिवन्नोवि परिवडइ ।। पच्चक्खाणं सव्व विरई, तमावरन्ति तेण पच्चक्खाणा–वरणा वुच्चन्ति, तेसिं उदयाओ सव्वविरतिं ण पडिवज्जइ, पडिवन्नोवि परिवडइ । सव्वपावविरयमवि जइं संजलयन्ति त्ति संजलणा वुच्चन्ति; संजलणाणं उदयाओ अहक्खाय चारित्तं,ण लभति यथाख्यात चारित्रं, कुशिष्य स्वाभं वा न प्राप्नोति, प्राप्तो वा तदुदयात्प्रतिपत्तो भवति ।

णोकसाया कषायैः सह वर्त्तन्ते, नहीं तेषां पृथक् सामर्थ्यमस्ति, जे कसायोदये दोसा तेऽपि तद्योगात् तद्दोषा एव, अणन्ताणुबन्धि सहचरिता ते अणन्ताणुबन्धि सहावं पडिवज्जंति, तग्गुणा भवन्ति त्ति भणियं होइ ।

अल्प प्रत्याख्यानदेश विरति है उस अल्प भी प्रत्याख्यान को ढकती हैं तो सर्व विरति को क्यों नहीं ? इसलिये (वे) अप्रत्याख्यानावरण कहीं जाती हैं। उनके उदय में वर्तमान देश विरति को भी प्राप्त नहीं होता है, प्राप्त हो गया हो तो उसके उदय से वह विरति से रहित हो जाता है। प्रत्याख्यान सर्व विरति है; उसको ढकने से (उनको) प्रत्याख्यानावरण कहते हैं। उनके उदय से पूर्ण विरति को जीव प्राप्त नहीं होता है। यदि सकल व्रत को या संयम को प्राप्त हुआ है तो भी उसके उदय से प्रतिपतन करता है। सर्व पाप विरत यति को भी जो संज्वलित करती हैं उनको संज्वलन कहते हैं। संज्वल के उदय से यथाख्यात चारित्र को नहीं प्राप्त करता है क्योंकि वह कषाय रहित के होता है। या सुविशुद्ध स्थान को वह नहीं पाता है प्राप्त होने पर भी उसके उदय से मलीमस–म्लान होता है। नोकषाएं कषायों के साथ रहती हैं उनकी पृथक् सामर्थ्य नहीं है, जो कषाय के उदय में दोष हैं वे जीव भी उसके योग से उस दोष वाले ही हैं जो अनन्तानुबन्धी की सहचारिणी हैं अनंतानुबंधी स्वभाव को प्राप्त होती है, तद्गुण वाली (तत् सदृश) होती हैं ऐसा तात्पर्य है।

एवं सेसकसाएहिंवि सहवत्तव्वं

पूर्ववत्, संसर्गजाः णोकसायातद्दे सवर्तिनः तम्हा एएवि चरित्तं मोहेत्ता जहा कसाया तहा चरित्त घाइणो भवन्ति ।

इत्थिम्मि अभिलासो पुरिसवेदोदएण जहा सि भोदए अम्बाइसु ।

इत्थिवेओदएण पुरिसाभिलासो पित्तोदए मधुराभिलाषवत् ।

नपुंसगवेओदयाओ इत्थिपुरिसदु–गमहिलसति धातुद्वयोदीर्ण मज्जिका दि अव्याभिलाषि पुरुषवत् ।

हासोदयाओ सणिमित्तं वा हसइ रंग-नतनप्वत् सोगोदयाओ परिदेवन-हननादि करोति ।

सोमानसोविकारः रतिः प्रीतिः, बाह्याभ्यन्तरेषु वस्तुषु विषयेन्द्रियादिषु । एतेष्वेवाप्रीतिररतिः ।

भयं त्रासो उद्वेगः ।

इस प्रकार शेष कषायों के साथ भी पूर्ववत् वक्तव्य है (पहले की भांति)। संसर्ग से होने वाली नोकषाय है उस देश-स्थान में रहने वाली हैं अतः ये भी चारित्र

को मोहती हैं जैसे कि कषाय। तथा वे चरित्र को घातती हैं। पुरुषवेद केउदय से स्त्री में अभिलाषा होती हैं। जैसे कि कफ के उदय से आम्र आदि में इच्छा होती है। स्त्री वेद को उदय से पुरुष की अभिलाषा होती है जैसे कि पित्त के उदय से सौंफ ठण्डाई (मिश्री) आदि की अभिलाषा होती है।। नपुंसक वेद के उदय से स्त्री पुरुष दोनों की जीव इच्छा करता है जैसे कफपित्त दोनों धातुओं के उदीर्ण-कुपित्त होने पर पुरुष मज्जिका शिखरणी आदि द्रव्य का अभिलाषी होता है।

हास्य के उदय से सनिमित्त भी हंसता है और निर्निमित्त भी जैसे रंगमञ्च पर नट हंसता है। शोक के उदय से जीव परिदेवन रुदनविशेष गुप्त उपकार स्मरण पूर्वक छाती पीटना घात प्रतिघात हनन आदि करता है। जो मानस विकार प्रीतिरूप है वह रति है वह अंतरङ्ग, वस्तुओं में विषय इन्द्रियादि में होता है। इनमें अप्रीति अरति हैं। 'भय' त्रास-डर या उद्वेग है।

इयाणिं आउगं, ति, आनीयन्ते

शेष प्रकृति-सप्तक-विकल्पा: तस्मिन्नुपभोगार्थं जीवस्य कांस्य पल्याधारे शाल्योदनादि-व्यञ्जन विकल्पानेक भोज्यवत्, आनीयते वाऽनेन तद्याधान्तर्भाविप्र कृति गुण समुदय: तदैकत्वेन रज्ज्वबद्धेक्षु यष्टिभारकवत्। शरीरं वा तेनाव बद्धमास्ते यावदायुष्कं शिगल-बद्ध-पुरुषवत्, तेण आउगं भन्नइत्ति। तं चउव्विहं, तं जहा-निरयाउगं तिरियमणुयदेवाउगमिति णिरइगाण पाइगं 'णिरयाउगं एव सर्वत्र। इयाणिणाम तिणमयति परिणामयति णिरयाइ भावेणेतिणामं, अहवा णामेइ जं जीव-प्रदेशान्तर्भावि पुद्गल द्रव्य विपाक-सामर्थ्यात् संज्ञां लभते तन्नाम, कर्मपदेन वाक्येन वा समाहूयते तत्सम्बंधात् नील-शुक्लादिगुणोपेतद्रव्य समादिग्ध चित्रपटादि, द्रव्यव्यपदेशादि शब्द प्रवृत्तिवत्।

णामकम्मस्स बायालीसं पिंडपगडीओ तं जहा—

अब आयु को बतलाते हैं।

शेष सात भेद रूप प्रकृति कर्म उसमें जीव के उपभोग के लिये लाये जाते हैं। जैसे कांसी के पात्र के आधार में शालि के भात आदि व्यञ्जन भेद से अनेक भोज्य लाये जाते हैं। या इसके द्वारा उस भाव में होने वाली प्रकृति-गुण समुदाय लाया जाता है। जैसे उसके एकत्व से रस्सी से अवबद्ध-लपेटा हुआ सांटों का गट्टर या भारक होता है। या शरीर उससे अवबद्ध है जब तक आयु है बेडी से बंधे पुरुष की भांति है उससे आयु को बतलाते हैं। वह चार विध हैं—वह इस प्रकार है नरकादि तिर्यंचमनुष्य और देव भाव रूप से है। नराकीयों, की आयु नरक आयु ऐसे सर्वत्र झकाती है। परिणाम कराती नरकादिभाव रूप से वह नाम है। अब नाम को कहते हैं अथवा जो जीव प्रदेशान्तर्भावी पुद्गल द्रव्य विपाक की सामर्थ्य से नमाता है,

संज्ञा को पाता है वह नाम है, कर्म पद या वाक्य से पुकारा जाता है जैसे उसके सम्बन्ध से नील-श्वेत-आदि गुण से युक्त द्रव्य से समादिग्ध-संयुक्त चित्रपट आदि द्रव्य व्यपदेश आदि शब्द प्रवृत्ति हैं।

नाम की बयालीस पिण्ड प्रकृतियां हैं वे इस प्रकार है —

गइणामं जाइणामंसरीणामं सरीरसंघायनामं सरीरबंधणणामं सरीर संठाणनामं, सरीर–अंगोवंग सरीर संघयणस्वन्न-गंध-रस-फास-आणुवुव्वि अगुरुलहुग-उवघाय-परघाय उस्सास आयुवुज्जोअ-विहायगइ-तस-थावर-बायर-सुहुम-पज्जत्तग-अपज्जत्तग–पत्तेय–साहारणसरीर–थिर-अथिर-शुभ-असुभ-सुभग दुभग–सुस्सर–दुस्सर-आएज्ज-अणाएज्ज-जस-कित्ति-णिम्माण-तित्थगरणामं चेति ।

पिंडपगइ त्ति, मूल भेओ । गम्मतीति गति । जति (यदि) गम्मइत्ति गई, तो जीवेण सव्वे पज्जवा गम्मंते । तम्हा सव्वपज्जवाणं गइप्पसंगो ? ण, विसेसियत्ताओ गइपज्जवेण अप्पातं णामकम्मोदयाभिमुहो परिणमइ गच्छतीति वा गति ।

"णिरय-गइ-तिरिय-मसुभं, विससओ मणुयदेव सुभउत्ति
जीवो उ चाउरन्त गच्छई गई तेणं ?"

गति नाम, जाति नाम, शरीर नाम, शरीर संघात् नाम, शरीर बंधणणाम, शरीर–संस्थान नाम शरीर अंगोवंग, शरीर संहनन, वर्ण गंध, रस, स्पर्श आनुपूर्वी अगुरुलघुक, उपघात, परघात उवास आताप, उद्योत, विहायगति त्रस स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक, अपर्याप्तक प्रत्येक साधारण शरीर, स्थिर अस्थिर-शुभ-अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय अनादेय, यश कीर्ति निर्माण और तीर्थंकर पिंड प्रकृति का मूल भेद है । गमन करने से वह गति है । 'यदि गम्मई का अर्थ जानी जाती है जाना जाता हैं वह गति है' तो जीव के द्वारा सब पर्याय जाने जाते हैं अतः उससे सब पर्यायों के गति का प्रसंग होता है ? नहीं, चूंकि उसमें विशेषता है जिससे गति पर्याय रूप से आत्मा उसको नाम कर्म के अभिमुख होते हुए परिणत करता है या प्राप्त होता है वह गति है ।

जीव, अशुभ नरक गति और तिर्यञ्चगति तथा शुभ मनुष्य और देवगति रूप चार अवस्थाओं को स्वभाव वस से पाता है उस से वह गति है ।

सा चंउव्विहा, णिरयगई तिरियमणुय देव गई । णिरयाणं गई णिरय गई, नारक गइत्ति नत्संज्ञां तत् लभते, तत्सम्बन्धात् । एवं सर्वत्र ।।

• जाति नामं ति—सव्वेसिं तज्जाइयाणं जं सामन्नं तिं सा जाइ वुच्चइ, एगिन्दियत्तं सव्वेगिन्दियाणं सामन्नं जाई । एवं सर्वत्र ।

अत्राह—फासिन्दियावरणस्स कम्मस्स खओवसमेण एगिंदिओ भवइ, एत्थ णामं उदइओ भावोत्ति तम्हा एगिंदियत्तं न घडइ ? उच्यते । सच्चं, फासिन्दियावरणस्सखओवसमेणं एगिन्दियलद्धी अइ तस्स जाइणामं ण होज्जा सो एगिन्दिओत्ति संज्ञा न लभते, तम्हा संज्ञा कारणं यत्कर्म तन्नामोच्यते । तस्स जाइणामस्स कम्मस्स पञ्चपगईओ तं जहा— एगेन्दिय-वेन्दिय तेन्दिय—चउरिन्दिय—पञ्चिन्दिय जाइणामं ति ॥

वह चार प्रकार की है । नरक गति, तिर्यञ्चगति मनुष्य गति और देव गति। नारकीयों की गति नरक गति । नरक गति उस संज्ञा को उस सम्बन्ध से पाता है । इस प्रकार सर्वत्र अर्थात् शेष गतियों के विषय में भी सम्बन्धित करना चाहिए ।

'जाति नाम' अर्थात् सब तत्जातियों का जो सामान्य है वह जाति कहलाती है । एकेन्द्रियता सब एकेन्द्रियों की सामान्य जाति है । ऐसे सर्वत्र यहां कहते हैं— स्पर्शेन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से एकेन्द्रिय होता है, यहां-प्रकृत में णाम औदयिक-भाव है अतः एकेन्द्रियता घटित नहीं होती? कहा जाता है यह सत्य है, स्पर्शेन्द्रियावरण के क्षयोपशम से एकेन्द्रिय लब्धि होती है यदि उसके जाति नाम कर्म न हो, तब तो एकेन्द्रिय यह संज्ञा प्राप्त नहीं करता है इस कारण संज्ञा के लिये जो कारण रूप कर्म है वह नाम कहा जाता है । उस जातिनाम कर्म की पांच प्रकृतियां हैं वे इस प्रकार हैं— एकेन्द्रिय-बेन्द्रिय, तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जाति नाम है ।

शरीरं ति, सीर्यते इति शरीरं, तस्स उत्तर पगईओ पञ्च, तं जहा—

ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेजइग-कम्मइग-सरीरणामंति । उदारं बृहदसारंसंणिपन्नमौदारिकं, असार-थूल-दव्व-वग्गणाकारण समारद्धं, ओरालियं, तप्पाओग्ग पोग्गलग्गहण-कारणं जं कम्मं तं ओरालिय सरीरणामं, पोग्गल विवागि पोग्गलग्गहण-कारणमित्यर्थः । एवं सर्वत्र ।

विविधगुणरिद्धि संपउत्त वेउव्वियं, य स्तदारब्धं ते पोग्गला विविधगुण रिद्धि-शक्ति-प्रचित धर्म्माणः विकरणारब्धं वै कुर्विकमिति ।

शुभतर शुक्ल विशुद्ध द्रव्यैः शरीरं प्रयोजनायह्रियते इति आहारकं ।

तेज इत्यग्निः तेजोगुणोपेतद्रव्यसमारब्धं तेज समुण्णगुणं, तमेव जया उत्तरगुणेहिं लद्धी समुप्पज्जइ तदा रोसाविद्धो णिसिरइ । जस्स ण संभवइ लद्धी, तस्स सततमुदराई आहार पाचकं ।

'शरीर' शीर्ण होता है अतः शरीर है । उसकी उत्तर प्रकृतियां पांच हैं, वे इस प्रकार हैं—

औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर नाम। उदार, बृहद् असार को कहते हैं उससे जो भी निष्पन्न वह औदारिक है असार, स्थूल द्रव्य वर्गणासे समारब्ध रचा गया औदारिक है उसके योग्य पुद्गल के ग्रहण का कारण जो कर्म है वह औदारिक शरीर नाम है (चूंकि) पुद्गल विपाकी पुद्गल के ग्रहण का करण है ऐसा ऐसा उसका तात्पर्य है। ऐसे सर्वत्र जान लेना चाहिए।

विविधगुणरिद्धिसम्पन्न वैक्रियक है। जिनके द्वारा वह रचा जाता है वे पुद्गल विविध गुण रिद्धि शक्ति सचित धर्म वाले विक्रिया के द्वारा रचा गया वैक्रियक है।

शुभतर शुक्ल विशुद्ध जब द्रव्यों के द्वारा शरीर के प्रयोजन के लिये सब ओर से ग्रहण किये जाते हैं वह आहारक है। तेज अग्नि है तेज गुण से युक्त द्रव्य से समारब्ध तेज के समान उष्ण गुण वाला तैजस है उत्तर गुण लब्धि से समुत्पन्न होने वाला है तब वह रोष से आविष्ट होकर निकलता है। जिसके लब्धि संभव नहीं है उसके सतत उदारादि आहार का पाचक होता है।

कम्मइगं सव्वकम्माधार भूत्त, जहां कुण्डं बदराईणं, सर्वकर्मप्रसवसमर्थ वा यथा बीजं अंकुरादीना। एसा उत्तर प्रकृतिः सरीर-णाम-कम्मस्स पृथगेव कर्म्माष्टक समुदाय भूतादिति, पोग्गलरचना विशेषः संघातः, तेसिं चेव गहियाणं पोग्गलाणं जस्स कम्मस्स उदयाओ सरीर रचना भवइ तं संघायणामं ॥

पोग्गलेसु विवागो जस्स सोय पञ्चविहो त जहा, ओरालिय सरीर संघायणामं, वेउव्विय-आहारग तेजस कम्मइग सरीर संघायणामं लेप्यक रचनादि विशेष-रूपवत् सरीर-पञ्चकस्य संघातः ॥

कार्मण सर्व-सब कर्मों के आधारभूत है जैसे बदरादिक-बोरादिक का कुण्ड आधार है या सम्पूर्ण कर्मों के प्रसव करने में उत्पन्न करने में समर्थ है। जैसे बीज अंकुरादि की उत्पत्ति में समर्थ है। यह उत्तर प्रकृति शरीर नाम कर्म की कर्माष्टक समुदाय भूत से पृथक् ही है।

पुद्गल की रचना विशेष संघात है और उन्हीं ग्रहण किये हुए पुद्गलों का जिस कर्म के उदय से शरीर की रचना होती है वह संघात नाम कर्म है।

पुद्गलों में जिस का विपाक है वह भी पांच प्रकार का है, वह इस प्रकार है।

औदारिक शरीर संघात नाम, वैक्रियक शरीर नाम, आहारक शरीर नाम, तैजस शरीरनाम कार्मण शरीर संघात नाम लेप्यक रचना विशेष के स्वरूप की तरह पांचों शरीर का यथासंभव संघात होता है या सन्निवेश होता है।

बंधणंति—गहिय-घेप्पमाणाणं पोग्गलाणं अन्नशरीरपोग्गले हि वा समं बन्धो अस्स कम्मस्स उदएणं भवइ तं बन्धणणामं। सो पञ्चविहो तं जहा-ओरालिय-वे उब्विय-आहारक तेजस-कम्मइग-शरीर-बन्धणणामं ति, विद्यते तत्कर्म यन्निमित्ताद् द्वयादि संयोगापत्तिराविर्भवति यथा काष्ट द्वय भेदैकत्वकरणाय जतुकारणं। एवं जतियाणि जत्थ सरीराणि सम्भवन्ति तेसिं बन्धणं भासियव्वं। अबद्धं हि ण संघाय मवज्जइ, बालुका-पुरुष-शरीरवत्, विश्लिष्टतृणादिवद्वा अहवा बन्धणामं पन्नरस विहं तंजहा ओरालिय-ओरालिय-सरीर बंधणणामं,ओरालिय-तेजइक ओरालि-कम्मइम ओरालियतेय कम्मइगसरीर बन्धणणामं।

'बंधन' पकड़ कर ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों का या अन्य शरीर पुद्गलों के साथ जिस कर्म के उदय से बन्ध होता है वह बन्धन नाम है। वह पांच प्रकार का है—वह इस प्रकार है—औदारिक वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण शरीर बन्धन नाम कर्म है। जिस निमित्त से वह कर्म विद्यमान होता है दो आदि के संयोग या सन्निकर्ष की प्राप्ति या आविर्भाव होता है जैसे दो काष्टों के भेद व ऐकत्व करने के लिये गोंद का कारण है। ऐसे जहां पर जितने शरीर संभव है उनके बन्ध का व्याख्यान करना चाहिए। जो अबद्ध है वह संघात को प्राप्त नहीं होता है। जैसे बालू या रेत का पुरुष शरीर संधन को प्राप्त नहीं होने से संघात को प्रात नहीं होता होता है या श्लिष्ट तृण आदि की भांति। अथवा बन्धनाम पन्द्रह प्रकार का है वह इस प्रकार है औदारिक, औदारिक तैजस, औदारिक कार्मण, औदारिक तैजस कार्मण, शरीर बन्धन नाम।

एवं वे उव्वियसरीराणं। एवं आहारग सरीराणं। तेजइम तेजइगं तेजइग कम्मइगं कम्मइग कम्मइगं चेति। जेण पुव्व गहियाण वट्टमाण समयगहियाणं च सह बन्धणं कज्जइ तं ओरालिय ओरालिय सरीर बन्धणणामं एवं सर्वत्र ।।

मानोन्मान प्रमाणाण्य-न्यूना अन त्ति रिक्तान्यङ्गोपाङ्गानि यस्मिंच्छरीरसस्थाने तत्संस्थानं समचतुरस्रं स्वांगुलाष्टसत्तोच्छ्रयाङ्गोपाङ्ग, निम्मित लेप्यकवत्। णाभीतो उवरि सव्वावयवा समचतुरंसलक्खणा आविसंवादिमोहेट्ठाओ तदनुरूवं ण भवतितं णग्गोहं। णाभीहेट्ठाओ सव्वावयवा समचउरसलक्खणा अविसंवादिणो उवरि तवणु रूवंण भवइ तं सादि।

इस प्रकार वैक्रियक शरीरों के ४। इस प्रकार आहारक शरीरों के ४। तैजस तैजस तैजस कार्माण और कार्माण। जिससे पूर्वग्रहीत और वर्तमान समय ग्रहीत के साथ बन्धन करता है वह औदारिक औदारिक शरीर बंधन नाम है।

संठाणं ति—संस्थानमाकृति विशेष: तेसु चेव गहिय संघाइय पविट्ठेसु पोग्गलेसु संस्थान विसेषो यस्य कर्मणः उदयात् भवइ तं संठाणणाम तं छव्विहं, तं जहा समच

उरंससंठाणणामं, णग्गोहसंठाणं साइसंठाणं खुज्जसंठाणं वामणसंठाणं हुण्ड संठाण-मिति।

संस्थान आकृति विशेष है। और उन्हीं में ग्रहण किये हुए संघात प्रविष्ट पुद्गलों में संस्थान विशेष जिस कर्म के उदय से होता है। वह संस्थान नाम छह प्रकार का है वह इस प्रकार है समचतुस्र संस्थान नाम, न्यग्रोध संस्थान स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान वामन संस्थान और हुण्डक संस्थान।

मान और उन्मान प्रमाण वाले अङ्गोपाङ्ग, न्यूनाधिक जिस शरीर संस्थान में नहीं होते वह समचतुरस्र संस्थान है।

नाभी से उपर सब अवयव समचतुस्र लक्षण वाले अविसवाद से नीचे के उसके अनुरूप नहीं होते हैं वह न्यग्रोध संस्थान है। जिससे—

नाभी से नीचे के सब अवयव समचतुरस्र हैं और ऊपर के अविसंवाद रूप से उसके अनुरूप नहीं होते हैं वह स्वातिसंस्थाननामकम है।

गीव ओ उपरि हत्था पाया य आइल-क्खणजुत्ता संखित्त-मज्झकोष्ठ कुज्जं। लक्षणयुक्तं कोष्टं ग्रीवाद्युपरिहस्तपादयोश्चवादिन्यूनलक्षणं मनं। कुब्जमेतद्विपरीतं। हस्तपाद्यवयवा बहुप्राया: प्रमाण विसंवादिनों तं हुण्डमिति। कहा भी है

"तुल्लं, वित्थर, बहुल, उस्सेह बहुँ च, मडह कोट्ठं च
हेट्ठिल्लकायमडहं, सव्वस्था संट्ठियं हुँडं ॥१॥"

ग्रीवा से ऊपर हाथ पैर आदि लक्षण युक्त संक्षिप्त विकृत मध्यकोष्ठ मध्य (कुबड युक्त) कुब्जक है।

लक्षण युक्त कोष्ट वाला, ग्रीवादि हाथ पैर आदि न्यूनलक्षण वाला वामन संस्थान है। कुब्जक इससे विपरीत लक्षण वाला है।

हाथ पैर आदिक अवयव बहुत से संख्या मे अधिक प्रमाण वाले विसंवादी जिस कर्म के उदय से होते है वह हुँड है।

तुल्य (१) विस्तार बहुल (२) और उत्सेध बहुल (३) मध्य कोष्ठ (४) अध: (ह्रस्व) काय मध्य (बौना) (५) और सर्वथा असंस्थित (विषम) बेडौल अधिक अवयव हुँड है।

"अंगोवंगं ति—अंगाणि उवंगाणि य अंगोवंगाणि जस्स कम्मस्स उदएणं णिव्वत्तन्ते तं अंगोवंगणामं।

"दो हत्था दो पाया पिट्ठी पेट्टं उरं च सीसं च।
एए अट्ठङ्गा खलु अङ्गोवङ्गाणि सेसाणि ॥११॥

यत्कर्मोदयादेवं विधा निवृत्तिरिति। तं तिविहं उरालियशरीरअङ्गोवङ्ग, वे उव्विय शरीर अङ्गो वङ्ग, आहारक शरीर अङ्गोवङ्गमिति। एगिन्दियवज्जेसु सेसेसु

सम्भवन्ति ।। संघयणं ति—अत्थि बन्धणं तं छव्विहं, तं जहा वज्जरिसहनाराय संघयणं वज्जनाराय अद्धनाराय कीलिया-असंपत्त सेयवट्ट संघयणमिति ।

मर्कट बन्ध संस्थानीय: उभयपार्श्वयोरस्थिबन्धो यस्य तं णारायच, ऋषभं पट्ट:, वज्रं कीलिका, वज्रं च ऋषभं च नाराच यस्यास्ति तंवज्रर्षभ नाराच सहननं मर्कटपट्ट कीलि का रचना युक्तं प्रथमं ।

अग और उपाग जिस कर्म के उदय से बनते हैं वह अंगोपाङ्ग नाम है। "दो हाथ, दो पैर, पीठ, पेट, हृदय और शीश ये आठ अङ्ग हैं और शेष उपांग है।"

जिस कर्म के उदय से इस प्रकार रचना होती है वह तीन प्रकार है। औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग वैक्रियक शरीर अङ्गोपाङ्ग, आहारक शरीर अङ्गोपाङ्ग ये एकेन्द्रिय के बिना शेषों में होते है।

संहनन अस्थि बन्धन है वह छह विध है वह इस प्रकार है—बज्रवृषभनाराच, संहनन, वज्र नाराच, अर्धनाराच कीलक और असंप्राप्तासृपा—छेवा संहनन है। 'जिसके मर्कट बलय बन्ध संस्थानीय दोनों पार्श्व में अस्थि बन्ध है वह नाराच ऋषभ अर्थात् पट्टा, बज्र अर्थात् कीलिका, वज्र ऋषभ और नाराच ये तीनों जिसके है वह वज्र ऋषभ नाराच, संहनन, मर्कट, पट्ट, कीलिका रचना युक्त प्रथम संहनन है।

मर्कट कीलिकायुक्तं द्वितीयं। बलय मर्कटसंयुक्तं तृतीयं। मर्कटैक बलम देशबन्धेन द्वितीय पार्श्वे कीलिका संबद्ध चतुर्थ। अङ्गुल (अस्थि) द्वयसयुक्तस्य मध्यकीलिका एवं दत्ता एत कीलिका सहनन। असंपत्त सेवट्ट अस्थीनि चर्म्माणि निकाचितानि केवलमेवेलि। एवं विद्याऽस्थि संघातकारिसंहनन नाम औदारिक शरीर विषय मेव, संहन्यमानाना कपाटाहीनां लोहादिपट्टरचनाविशेषोपकारि द्रव्य वत् संहनन ।।

वण्णणाम औरालियाइसु सरीरेसु जस्सोहयाओ कालादिपञ्च विहं वण्णणिप्फी भवइ, जहा चित्तकम्माइसु तब्भिन्नवण्णा समारद्धसु कारणं सुक्कवण्णणिप्फत्तिवत्। तं पञ्चविहं—तं जहा—कण्ह—णील—लोहिय—हालिद्द सक्किल्ला णामं

गन्धो त्ति तेसु चेव शरीरेसु सुगन्धया दुगन्धया वा जस्स कम्मस्स उदएणं भवइ तं गन्धणामं रसणामं—तेसु चेवसरीऐसु जस्स उदयण रसो संरसणामं तं पञ्चविह, तं जहा—तित्त—रसणाम कडुकणामं कसायणामं अम्बिकणामं महुरणामं चेति ।।

फासो त्ति—तेसु चेव पोग्गलेसु कक्खड—मउ काइ फासो जस्स कम्मस्स उदएणं पाउब्भवइ तं फासणामं तं अट्ठविहं, तं जहा-कक्खड फासणामं मउग-गुरुअलहुग-णिद्ध-रुक्ख-सीय-ओसिणनामं चेति। एयाइं सरीर संघाय-बन्धणाईणि जाव फासन्ताणि गहिए सुओरालिआइसु पोग्गलेसु विवाकं देन्ति ।।

आणुपुव्वित्ति—आणुपुव्वी णाम परिवाडी, कासिं ? सेढीणं, पुव्वं आकारस्य तासिं अणुसेढिगमणं जस्स कम्मस्स उदयाओ भवइ ते आणुपुव्वीत्ति—णामं अंतरगइए वहमाणस्स जा उवग्गहे वट्टइ, यथा जलचरस्स गइपरिणयस्स जलं सा आणुपुव्वी ।

गई दुविहा, उजुगई वक्कगती य, जत्थ उज्जुगती तत्था पुरक्खउगेणेव गच्छइ, गंतूण उववत्ति ठाणे वि पुरेक्खा इमाउगं गेण्हइ। वक्क-गई कोप्पर, पाणिक्ता लांगल-गोमुत्तिलक्खणा, एकद्वित्रिसमइका। ताए पुण गच्छन्तो जत्थ वक्कमारभत तत्थ पुरेक्खडमाउगं गेण्हि ऊण तं वेएइ, तत्थ य तन्नामाणु पुव्वीए उदओ भवइ। उज्जुआते समओ, तम्मि षयं आणुपुव्वीए ण य पुरेक्खडाउगुदउत्ति ।।

अगुरुलहुत्ति – णोगुरु, णोलहु, णोगुरुलहु अगुरुलहु जस्सोदयाओ अगुरुलहुत्तं सव्वेसिं जीवाणं अप्प अप्पणो सरीरं गुरुगं ण लहुग अगुरु लहुगं। अगुरु लहुगं पञ्चविहपि सरीरं णिच्छयाओ गुरुगं लहुगं, गुरुलघु वा ण भवइ, किन्तु अन्नोन्नावेक्खाए तिन्निवि सम्भवन्ति ।

उवघायं त्ति—जस्सोदएण परेहिं अणेगहा घाइज्जति। परघाओ-जस्सोदयाओ जीवो अणेगहा परं हणइ।

उस्सासो जस्सोदयाओ ऊसासाणीसा सथा भवति ।

आयवणामं तवणं तपोऽमर्यादया तप आतयः तं जस्सोदयाओ भवइ तं आयवणामं आइच्च मण्डल, पुढविपकाइए, चेव विपाको णाऽण्णत्थ ।

उज्जोयणाम उद्योतनं उद्योतः प्रकाशः अणु-सिणो (ओ) पकासो जस्सोदयाओ भवइ तं उज्जोयणामं, खज्जोयगाईणं, ण पुण, अग्गिस्स फासो असिणणामाओ रूवं लोहिय णामंति ।

विहाय-गई चङ्कमणं गमणं विहाओगई एगट्ठा, णेरइअतिरिय-मणुअ-देवाणं जस्सोदएणं गमणं हंसगज वस मादीणं, अपसत्थ विहाय गई य उट्टटोल सिगाला-दीणं ।। तस्स णामं 'जस्सोदयाओ फन्दइ चलइ गच्छइ ।। (व्युत्पत्ति)

थावरणामं जस्सोदयाओ ण फन्दइ ण चलइ। (सुहुम, तसे, तेऊ, वाऊ मोतूणं,) तेसिं थावरोदएवि सरीर-सभावाओ देसन्तर गमणं भवइ ।।

बायरणामं थूल जस्सोदयाओ थूलया भवइ सरीरस्स तं बायरणामं ।।

सुहुमं सूक्ष्मं जस्सोदया ओ सुहुमता भवति सरीरस्स तं सुहुमणामं । ण चक्खु-ग्गाहं, तं पडुच्च अन्नोन्नवेक्खायाओ वा बायरसुहुमता ।।

पज्जत्तणामं जस्सोदयाओ णिप्पत्ति गच्छइ आपाकप्रक्षिप्तअनिर्वृत्त घटवत् तं पज्जत्तणामं ।।

अपर्याप्तक अनिप्पन्नध्वंसि अर्द्धपक्क विनष्टघटवत् जस्सोदयाओ णिप्पत्ति न गच्छइ ।।

पत्तेगं ति—न सामान्य जस्सोदयाओ एको जीवो एक सरीरं णिव्वत्तेइ, तं प्रत्येक यथा—देवदत्त यज्ञदत्तादीनां पृथग् गृहवत् ।। साहारणं ति-सामान्यं जस्सोदयाओ वहवो जीवा एगं शरीरं णिव्वत्तयंति, यथा देव दत्तादयो सामान्यं देवकुल ।

थिरणाम यदुदयाच्छरीरावयवानां स्थिरता भवति यथा—शिरोऽस्थि दन्तानां ।

अस्थिरनाम तदवयवानामेव मृदुता भवति यथा—नासिका—कर्णत्वचा-दीना ।

शुभाशुभ शरीरावयवानामेव शुभाशुभता यथारीर इत्यादयः शुभाः तैः स्पृष्ट-स्तुष्यति, पादेन स्पृष्टो रुष्यति ते ऽशुभाः ।

सुभगं दुर्भग कमनीयः सुभगः मनसः प्रियः इतरो दुर्भगः ।

सुस्सरदुस्सरं बं इन्दियाइयाणं सदो सरो येनोच्चारितेन प्रीतिरुत्पद्यते स सुस्सरता तव्विवरीया दुस्सरता ।

आएज्जं प्रमाणी करणं अएज्ज कम्मोदयाओ जं तस्स चेट्ठियं जं वा तस्स वयणं तसव्व मणुएहिं पमाणी किज्जइ, त जहा—जमअणेण कयं तं अम्ह पमाणं ति । मध्यस्थ मनुजवचनमर मनुजचेष्टितवत्, (मध्यस्थमनुज वचनक्रियानुकूल्ये नेतरमनु-जचेष्टितवत्) विपरीतमणाएज्जं । अथवा आदेयता श्रद्धेयता शरीरगता, तव्विपरीयमनादेय मिति ।

जसकित्ति कीर्त्तन संशब्दनांकीर्तिः, यश इति वा शोभनमिति वा एकार्थः, यशसा लोके कीर्तनं यशः कीर्ति । तत्पुनः केन संसद्दनं? पुण्य—शौर्य—सत्क्रियानुष्ठानाच-लित—स्वाध्याय-ध्यान-शोभनार्थावलम्बनात् संसद्दनं कीर्त्तन यशःकीर्त्तिकर्म-विपका भवति अथवा यश इति इह लोके वर्तमानस्य परलोकगतस्यापि (वा) यशः सा कीर्तिरिति तव्विवरीयमयशःकीर्तिः ।

णिम्माणं ति,—निम्मार्णं सव्वजीवाणं णि अप्पप्पणो सरीरावयवाण विणासणियमणं जहा–मणुस्साणं दो हत्था दो पाया उरोसिराइविन्नासो, एवं सेस-जीवाणंपि, जहा वट्टइ अणेगकलाकुसलोपासायाइसु शास्त्र सिद्धलक्षणात् (येन) णिम्माणेइ तहा णिम्माणंपि।

तित्थयरणामं जस्स कम्मस्स उदएणं संदेवासुरमणुस्स लोकस्स अच्चिय-पूइय-वंदिय-णमंसिए धम्मातित्थङ्करे जिणे केवली भवति तं तित्थगरणामं ।

नामं भणियं

इयाणिगोत्तंति—गच्छइ जीवो उच्चाणीयं जातिमिति गोयं। तं दुविह, उच्चागोत्तं नीयागोयं च, अन्नाणीवि विरूवोवि अधणोवि जाइमत्तादेव पूइज्जइ तं उच्चगोत्तं। पंडिओवि सुरूवोवि धणवन्तोवि सव्वकला कुशलोवि णिन्दिज्जइ उव-हासिज्जइ अवमाणिज्जइ तं णीयागोत्तं।

इयाणि अन्तराइगंति–अन्तरे एइ व्यवधानं गच्छइ अणेण जीवस्स दाणाइ-पज्जयस्स दाणाइविघ-पज्जएणेति अन्तराइगं तं पञ्चविह, दाण–लाभ-भोग-परिभोग-वीरियन्तराइयमिति। तत्थ दाणान्तराइगंणाम दव्व पडिग्गाहक-सन्निकेवि दिन्नं महफलं ति जाणं तोवि दायव्वं ण देइ जस्स कम्मस्स उदएणं नं दाणं तराइगं। सव्वकालं णाम दव्वपडिग्गाहक सन्निकेवि दिन्नं महफलं ति जाणं तोवि दायवंण देइ जस्सकम्मस्स उदएणं तं दाणंतराइगं। सव्व कालं सव्वेसिं देन्तोवि, जस्स ण देइ तस्स तं लाभान्तराइगोदओ। एक्कासिं भोत्तूण छड्डिज्जइ तं उवभोगं मल्लइगं, तं विज्ज माणं पि जस्स कम्मस्स उदएं ण भुंजइ जहा-सुभोयणं, तं उवभोगन्तराइगं।

परिभुंजइ पुणो पुणो भुज्जति त परिभोगं स्त्री वस्त्रादिक, सन्निहियं पि जस्स कम्मस्स उदएणं ण भुंजइ जहा-सुबन्धु, एतं परिभोगन्तराइगं।

वीर्यं शक्ति :—चेष्टा उत्साहः जो समत्थो वि णिरूजोवि तरुणोवि अप्पबलो भवइ जस्स कम्मस्स उदएणं तं वीरियन्तराइगं तस्स सव्वोदओएगिन्दिएसु तओ उत्तरं कमेण खओवसमविसेसेण बेन्दियाणं वीरियवुड्ढी ताव जा दुचरिम समय छउमत्थोत्ति, केवलम्मि सव्व बलओ।

एवं पगइ समुकित्तणा
पगईणं अत्थविवरणा
य कया

इसका अर्थ पत्र—३५३ से देखो !

एत्थ अन्धपडुच्च वीसुत्तरं पगइसतं गहियं, तं जहा–णाणा वरणाणि ५, दसणावरणाणि ६, सायासायं २, छव्वीस २६ मोहणिज्ज सम्मत्त–सम्मामिच्छत्त

वण्णं आऊणि ४, गति ४, जाति ५, पंचसरीराणि य सरीर-बन्धण-संघायणाणि सरीरग्गहणेण गहियाइं, संठाण ६, संघयण ६ अङ्गोवङ्ग ३, वण्ण-गन्ध-रस-फासभेय-वज्जाणि, आणुपुव्वीओ ४, अगुरु लहु-उव घाय उस्सास आया व उज्जोय विहाय २ तस थावराइ वीसं णिम्माणं तित्थयरमिति उच्चंणीयं च अन्तराइ-गाणि त्ति ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इयाणिं मूलुत्तर पगईणं बन्ध-पडुच्च साइ अणाइय परूवणा भण्णइ—

४० वाँ गाथा सूत्र

साइ अणाई, धुव, अद्धु वोय, बन्धो य कम्मछक्कस्स
तइए साइयवज्जो (सेसो) अणाइ धुव सेसओ आऊ ॥४०॥

सादि अनादि ध्रु व और अध्रु व बन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय इन छह के होता है वेदनीय को सादि बन्ध नहीं है शेष हैं। आयु का अनादि और ध्रु व बन्ध नहीं होता।

व्याख्या—'साईलणाइ' साइयं णामजस्स बन्धस्स आई अत्थि सह आइणा वट्टइ त्ति साइओ बन्धो। जस्स बन्धस्स सनाति पडुच्च आई णात्थि सो अणाइओ बंधो जस्स बन्धस्स वोच्छेओ नत्थि सो धुवो बन्धो। जस्स बन्धस्स परिनिष्ठानमस्ति अन्त इत्यर्थः सो अधुवोबन्धो। एएणं अत्थपएणं णाणावरण-दंसणावरण-मोहणिज्ज-णाम-गोय-अन्तराइगाणं एएसिं छण्ह कम्माणं बन्धो साइओवि अणाइओविधुवोवि अधुवोवि सम्भवइ। कहं? भन्नइ, मोहवज्जाणं पञ्चण्हं कम्माणं सुहुम-सम्पराइगस्स जावचरिम-समओ ताव सव्वे हेट्ठिल्ला समयबन्धगा।

उवसंत कसायस्स तेसिं कम्माणं बन्धोणत्थि तओ भवक्खएण ठिइक्खएण वा परिवाडियस्स पुणो बन्धो भवइ, ततो पभिति साइओ बन्धो। उवसन्तट्ठाणं अप्पत्त-पुव्वस्स अणाइओ बन्धो, बन्धस्स आयभावात्। धुवो अभवियाणं, बन्धवोच्छेदा भावात्। अधुवो भवियाणं बन्धवोच्छेओ णियमा होहि त्तिकाउं। एवं मोहणिज्जेवि भावणा। णवरि बन्धवोच्छेओ अणियट्टिचरिम-समए वत्तव्वो! 'तइए साइयवज्जो (सेसो) त्ति तइयं ति-वेयणिज्जं तस्स साइगं मोत्तूण सेसा तिन्नि सम्भवन्ति। कहं भन्नइ, वेयणिज्जस्स सजोगि केवलिचरिम-समए बन्धवोच्छेओ, ततो हेट्ठिल्ला सव्वे विसआ बन्धन्ति, अजोगिस्स बंध वोच्छेदे पुणो बन्धोत्थि त्ति काउं साइओ णत्थि। सेसविभ भावणा-पूर्ववत्। 'अणाइ धुव सेसओ आऊ' त्ति आउगस्स अणाइधुवं च

चुणं च मोत्तूण सेसाणि वे सम्भवन्ति, आउगस्स अप्पप्पणो आउगतिभागे बंधाइयसं तं समयं, अन्तो-मुहुत्ताओ पुणो फिट्टइ ति अधुवो, तम्हा अणादिक धुवाण सम्भवो णत्थि ।।४०।।

वेदनीय का सादि बन्ध नहीं है चूंकि तेरहवें के पश्चात् अयोग केवली अवस्था में नष्ट हो जाता है तथा पुनः नहीं बन्धता और उसके पहले सतत बन्धता ही रहता है ।

आयु का त्रिभाग में बन्ध होता है और बन्ध अन्तर मुहूर्त के पश्चात् विच्छेद को प्राप्त होता है अतः अनादि और ध्रुव बन्ध आयु का नहीं होता है ।

शेष कर्मों का बन्ध अपने अपने स्थान में विच्छेद को प्राप्त होता है और पुनः बन्ध तो हैं। तो अध्रुव और सादिपना भी उपशमक होकर ६ बन्ध रहित उपशांत होने पर भी सम्भव है । अभव्य के अनादि और ध्रुव बन्ध छह कर्मों का होता है। चूंकि छह कर्मों का बन्ध सतत होता रहता है ।

इयाणिं उत्तर-पगईणं—१२०

अब उत्तर प्रकृतियों के आदि सादि बन्ध को कहते हैं ।

४१ वां गाथा सूत्र

उत्तर-पयडीसु तहा धुविगाणं चउविगप्पोय साई ।
अद्धुवियाओ, सेसा परियत्त ७३ माणीओ ।।४१।।

व्याख्या——'उत्तर पगडीसु तहा' उत्तर पगइसु सत्ता चत्तालीसं धुव-बन्धीओ, तं जहा--पंच-णाणावरण, नव दंसणावरण मिच्छत्त सोलस कसाया, भयं दुगुच्छा तेजइ कम्मइग-वन्न-गन्ध-रस-फास-अगुरुलहु-उवघाय-णिम्माणं 'पञ्च न्तराइकमिति एएसि सत्तचत्तालीस चत्तारियि भावा अत्थि । कहं ? भण्णइ, पंच णाणावरणं, उवरिल्लचत्तारि दंसणावरणं पंचण्हमन्तराइगाणं सुहुम-रागस्स चरिमसमए बन्ध वोच्छेओ, हेट्ठिल्ला णियमा बन्धका, उवसन्त कसायस्स बन्धो णत्थि, तओ पडिवडन्तस्स सादिकादयो योज्याः पूर्ववत् ।

चउण्हं संजलणाणं अणियट्टिम्मि बन्धवोच्छेओ, तओ भावेयव्वं । णिद्दा पयलाणं तेजइग-कम्मइग-वण्ण अगुरु-लहु-उवघाय-णिम्माण-भय-दुगुंछाणं जहक्कमेणं अपुव्वकरणम्मि बन्धवोच्छेओ तओ भावेयव्वं । पच्चक्खाणावरणाणं कसायाणं देसविरयम्मि बन्धवोच्छेओ, तओ परिवडन्तस्स साइयाइओ योज्याः पूर्ववत् ।

अनंतानुबंधीणं ४ असंजयसम्मद्दिट्ठिम्मि बन्धवोच्छेओ, तओ भावेयव्वं बीणमिट्ठिविण-मिच्छात्ताणन्ताणुबन्धीणं मिच्छद्दिट्ठिस्स उवसमसम्मत्तं पडिवज्जस्स बन्धवोच्छेओ भवइ, तओ परिवडन्तस्स भावेयव्वं ।

'साइ अध्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ' त्ति परावृत्य पुणो पुणो बन्धइ त्ति परियत्तमाणीओ, तं जहा—सायासायं तिन्निवेया, हास-रईअरइ-सोग-जुगल ।

चत्तारि आउगाणि, चत्तारि गईओ पञ्च जाईओ ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-सरीराणि, छसंठाणाणि, तिन्न अंगोवंगाणि, छसंघयणाणि, चउरो आणुपुव्वीओ, पराघाय, ऊसास, आयव, उज्जोय, दो विहायगइओ, वीसं तंस थावरराई तित्थकर उच्चा-णीयमिति एते परस्पर विरुद्धत्वात् जुगवं ण बन्धन्ति परित्तमाणीओ परघाय उस्सास-पज्जत्तगणामए सह बन्धइ त्ति, न अपज्जत्तगणामए, एएण परित्तमाणीओ । आयवुज्जआणि एगेन्दियतिरिय गईए सम्मं वज्झंति त्ति ण परित्तमाणीओ, तीत्थगरा हारक नामाणि सम्मत्त संजम पच्चयाणि, न सव्वेंसि ति तेण परित्तमाणीओ । एएसि सव्वेसि साइओ अधुवो य बन्धो ॥४१॥

साद्यादि परूवणा कथा

उत्तर प्रकृतियों में ध्रुव हैं उनके चार विकल्प वाला सादि आदि बन्ध होता है और शेष ७३ पुनः पुनः बन्धने वाली परियत्तमाण प्रकृतियों में सादि अध्रुव बंध होता है ॥४१॥

व्याख्या—उत्तर प्रकृतियों में ४७ ध्रुव बन्ध वाली है—वे इस प्रकार हैं पांच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण मिथ्यात्व, सोलह कसाय, भय जुगुप्सा, तैजस, कार्मण-वर्ण गन्ध रस स्पर्श अगुरुलघु उपघात निर्माण और पांच अन्तराय इन सैंतालीस प्रकृतियों में सादि अनादि ध्रुव और अध्रुव ये चारों ही भाव पाये जाते हैं ।

कैसे ? इस के विषय में कहते है :—पाँच ज्ञानावरण उपर के चार दर्शनावरण पांच अन्तराय ये सूक्ष्म सांपराय के चरम समय में बन्ध व्युच्छित्ति को पाते हैं । नीचे वाले नियम से बांधते हैं ।

उपशांत कषाय वालों के इनका बन्ध नहीं हैं । उपशांत कषाय से गिरने वालों के सादि आदि बंध पूर्व की भांति योजित करना चाहिये ।

चार संज्वलन का अनिवृत्ति में बन्ध का व्युच्छेद होता है उस ९वें से ऊपर जाने पर बन्ध नहीं होता गिरने पर पुनः बन्ध होता है अतः सादि आदि बन्ध का विचार कर लेना चाहिए ।

निद्रा प्रचला तैजस कार्माण वर्णादि ४, अगुरुलघु उपघात निर्माण भय दुगंछा इनका यथाक्रम से अपूर्व करण में बन्ध व्युच्छेद होता है। उससे ऊपर चढ़ने पर बन्ध का अभाव तथा नीचे गिरने पर सादि आदि बन्ध होता है।

अप्रत्याख्यानावरण चार का देश विरत में बन्ध व्युच्छेद होता है उससे गिरने पर सादि आदि बन्ध पूर्ववत होता है।

अनंतानुबन्धी ४ का असंयत सम्यगदृष्टि में बंध नहीं होता है। उससे गिरने पर दूसरे और प्रथम गुण स्थान में इनका होता है। पूर्ववत् सादि आदि बन्ध का चिंतन करना चाहिये।

स्त्यानगृद्धित्रिक अर्थात् निद्रा निद्रा, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि तथा मिथ्यात्व, अनंतानुबन्धी का मिथ्यादृष्टि उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने पर बन्ध का उच्छेद हो जाता है किन्तु मिथ्यात्व में आने पर सादि आदि बन्ध होता है। ऐसा पूर्ववत्-चिंतन करना चाहिये।

शेष परियट्टमाण ७३ प्रकृतियाँ सादि और अध्रुव दो प्रकार के बन्ध वाली हैं परावृत्य (लौट कर) पुन: पुन: जो बंधती है वे परियत्तमान या परियट्टमाण प्रकृतियाँ हैं।

वे इस प्रकार हैं :—साता-असाता, तीन वेद, हास्य–रति–अरति-शोक का युगल-जोड़ा चार आयु, चार गति, पांच जाति, औदारिक-वैक्रियक, आहारक-शरीर, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, परघात उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहाय गतियाँ, बीस त्रस स्थावर आदि तीर्थंकर उच्चगोत्र नीचगोत्र ये ७३ हैं।

परस्पर ये विरुद्ध होने से एक साथ नहीं बंधती हैं। अर्थात् एक के बंध होने पर दूसरी का बन्ध नहीं होता है। ये बदल बदल कर बंधती हैं अत: परियत्त-मान हैं।

परघात उच्छ्वास पर्याप्तक नाम में साथ साथ बंधती हैं किन्तु अपर्याप्तक नाम में ये नहीं बंधती हैं अत: ये परावृत्य पलट कर बदलने वाली है।

आतप उद्योत ये एकेन्द्रिय तिर्यञ्च में साथ साथ बंधती हैं अन्य में नहीं अत: ये परियत्तमाण हैं।

तीर्थंकर आहारक नाम ये सम्यक्त्व और संयम प्रत्यय वाली हैं किन्तु सब सम्यक्त्वियों और संयतों के नहीं बंधती हैं इसलिये ये परियत्तमान है।

इन सब के सादि और अध्रुव बन्ध ही होता है।

सादि आदि बन्ध की प्ररूपणा की गई ।
इयाणि पगइट्ठाण भूओगाराइ परूवणा भन्नइ—
अब प्रकृतिस्थान भुजाकार आदि की प्ररूपणा करते हैं ।

४२ वाँ गाथा सूत्र

चत्तारि पयडि-ठाणाणि, तिन्नि भूयगार-अल्पतर गाणि ।
मूलपगडीसु एवं अवट्ठिओ चउसु नायव्वो ।।४२।।

८–७–६–१ का चार प्रकृति स्थान है, तीन भुजाकार और अल्पतर है अवस्थितबंध चार में हैं । इस प्रकार मूलप्रकृतियो में जानना चाहिये ।

व्याख्या—'चत्तारि पयडिट्ठाणाणि' मूल पगईणं चत्तारि पगइट्ठाणाणि बंध भेदा इत्यर्थः । तंजहा—अट्ठविहं, सत्तविहं, छव्विहं, एगविहं । अट्ठविकम्म पगडीओ बंध माणस्स अट्ठविहं पगईट्ठाणं, आउगवज्ज तमेव सत्तविहं; आउगमोहवज्जं बधमाणस्स तमेव छव्विहं, एगविय, वेयणीयं बन्धमाणस्स एक विहंति ।

'तिन्नि भूयगार अप्पतरगाणिन्ति' भूयोकारणाम, थोवाओ बन्धमाणो बहुकाओ बधइ । अल्पतरं णाम, बहुकाओ बंधमाणो थोवाओ बन्धई ।

अट्ठविहो चउसु णायव्वो 'त्ति अवट्ठिदो बंधोणाम, जत्तियाओ पढम समए बन्धइ तत्तियाओ चेव बिइयसमयाइ सु बधइ । एएसि अत्थो, इमोएम विहंबधमाणो छव्विहं बंधइत्ति तिन्नि भूओकारा । एगो एक समइओ पडिवत्तिकाले, सेस कांल अवट्ठिय बन्धो ।

अट्ठविहाओ सत्तविहाइगमणं अल्पतर बन्धो, सो वि एक समइओ, तिप्पगारो य, सेस कालं अवट्ठिओ ।

एवमवट्ठिय बन्धो चउविगप्पो अड्विहाइसु ।।

अवत्तव्व बन्धो अबन्धाओ बंध गमणं, मूलपगईसु णत्थि, मूलपगईणं सव्व बंधे वोच्छिन्ने पुणो बंधो णत्थि त्ति काउं । उक्तं च—

"एगादहिगे पढमो, एकादी ऊणगम्मि बिइओउ गाथा तत्तिय मे त्तो तइओ पढ मे समए अवत्तव्वो" ।।१।।

त्ति, मूल पगईणं भूओ काराईणि

भणियाणि

मूल प्रकृति के चार प्रकृति स्थान अर्थात् बंध भेद हैं। वे इस प्रकार हैं आठ प्रकार का, सात प्रकार, का छह प्रकार का और एक प्रकार का। जो आठ प्रकार की कर्म प्रकृतियों को बांधता है उसके आठ प्रकार का प्रकृति स्थान होता है। आयु के बिना वही सात प्रकार का है, आयु और मोह के बिना बांधने वाले के वह छह प्रकार का है और एक वेदनीय ही को बांधने वाले के एक प्रकार का है ऐसा जानना चाहिए।

तीन भुजाकार और अल्पतर हैं। भूयोकार या भुजाकार उसको हैं जो अल्प का बंध करते हुए बहुतों का बन्ध करने लगे।

अल्पतर वह है जो बहुतों को बांधते हुए अल्प को बांधता है।

अवस्थित चार में जानना चाहिये। अवस्थि बन्ध नाम उस का है जो जितनी प्रथम समय में बांधता है उतनी दूसरे आदि समयों में बांधता है। इनका अर्थ :—यह एक प्रकार का बांधते हुए छह–प्रकार का बांधता है। इस प्रकार तीन "भुजाकार" हैं। यह एक समय प्रति–पतन–गिरने के काल में घटित होता है। शेष काल में अवस्थित बन्ध होता है।

आठ प्रकार से सात प्रकार आदि को प्राप्त होना अल्पतर बंध है। वह भी एक समय वाला है और तीन प्रकार का है। शेष काल में अवस्थित बन्ध होता है। इस प्रकार आठ प्रकार का बन्ध चार विकल्प रूप आठ प्रकार सात प्रकार आदिकों में होता है।

अवक्तव्य बन्ध, अबन्ध से बन्ध को प्राप्त होना, मूल प्रकृतियों में नहीं है। क्योंकि मूल प्रकृतियों के सब बन्ध के व्युच्छेद हो जाने पर पुनः बन्ध नहीं होता है और कहा भी है कि :—

एकादि प्रकृति के अधिक होने पर प्रथम भुजाकार और एकादि के कम होने पर अल्पतर दूसरा बन्ध होता है उतना मात्र ही तीसरा अवस्थित बन्ध है और प्रथम समय में बन्ध अवक्तव्य होता है ४२ मूलप्रकृति के भुजाकार आदि बंध कहे गये।

इयाणिं उत्तरपगईणं
भण्णन्ति

अब उत्तर प्रकृतियों के बन्ध को बतलाते हैं।

तिन्नि दश, अट्ठठाणाणि दंसणावरणमोहणामाणं गाथा एत्थ य भूओगारो से सेसं हवइ ठाणं ॥४३॥

४३ वां गाथा-सूत्र

दर्शनावरण के तीन बन्ध स्थान हैं मोह के दश बंधस्थान हैं नाम के आठ बंधस्थान हैं इनमें भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य ये चारों बंध पाये जाते हैं। शेष कर्म प्रकृतियों के एक एक प्रकृति स्थान होता है।

व्याख्या—'तिन्नि दस....' तिन्नि, दस अठ्ठाणाणि पगइठांणाणि जहा संखेण दंसणा वरण-मोह-णामाणं ति।

'एत्थ य भूग्रोकारो' एएसु चेव कम्मेसु भूम्रो कारदम्रो चत्तारि। 'सेसेसेगं हवइ ठाणं' सेसाणं कम्मपगइणं एक्केक्कं चेव पगइट्ठाणं। दंसणावरणीयस्स तिन्नि पगइट्ठाणाणि-तंजहाणव विह छव्विहं चउव्विहं ति। सव्व-पगईणं समुदम्रो णवविहं। थीणतिग विरहियं तनमेव छाव्विहं, णिद्दादुगरहियं तमेव चउव्विहं,। एत्थ य वे भूम्रोकारा, दोन्नि अल्पतराणि अवट्ठिय बंधाणि तिन्नि, अवत्तव्वमे (दु) गंति। सव्व बंध वोच्छेए जाए पुणो बन्धइ अवत्तव्वग बन्धो। मोह णिज्जस्स दस पगइ-ट्ठाणाणि। लं जहा- बावीसा एक्कवीसा, सत्तरस, तेरस णव, पंच चत्तारि, तिन्नि, दो, एक्क त्ति। एएसिं विवरणा जहा सत्तरीए।

यथा क्रम से तीन, दश और आठ बंध स्थान दर्शनावरण मोहनीय और नाम के हैं।

इन कर्मों में भुजाकार, अल्पतर अवस्थित और अवक्तव्य ये चार प्रकार से बन्ध हैं।

दर्शनावरण, मोहनीय और नाम के सिवाय शेष कर्मों की प्रकृतियों के एक एक प्रकृति स्थान है।

दर्शना वरण के तीन प्रकृति स्थान हैं। वे इस प्रकार हैं:—नौ प्रकार, छह प्रकार, और चार प्रकार हैं। दर्शनावरण की—

(१) सर्वप्रकृतियों का समुदय समुदाय नव विध है। (२) स्त्यानगृद्धि, निद्रा निद्रा प्रचला-प्रचला के बिना वही छहंविध है। (३) निद्रा और प्रचला के बिना वही चार प्रकार का है। इस में भुजाकार दो हैं। अल्पतर दो हैं। अवस्थिम बन्ध तीन हैं। अवक्तव्य स्थान दो हैं। सब बन्ध के व्युच्छेद होने पर पुनः बन्धता है वह अव्यक्तव्य बन्ध है।

मोहनीय के दस प्रकृतिक स्थान है वे इस प्रकार हैं:—बाईस, का इकीस का, सतरह का, तेरह का, नव का, पाँच का, चार का, तीन का, दो का, और एक का

इन का व्याख्यान या विवरण सत्तरी के समान है।

एथ भूओ काराणिणव । अल्पतराणि अट्ठ ।

यहां मोहनीय के दस स्थानों में से भुजाकार नव हैं और अल्पतर आठ हैं ।

कहं ? बावीसाओ एक्कवीस गमणं णत्थि, मिच्छादिट्ठि सासण भावं ण गच्छइ त्ति ।

एक्क वीसाओ यिसत्तरबन्धगमण णत्थि, सासणो संमत्त ण पडि वज्जइ, णियमा मिच्छत्त गच्छइ त्ति तम्हा बावीसाओ सत्तरसाइगमणं अत्थि ।

अवट्ठिय बन्धा दस । अवत्तव्व गो (गा) एक्को (दो) ।

णाम कम्मस्स पगइट्ठाणाणि अट्ठ । तं जहा-तेवीसा, पणुवीसा छव्वीसा, अट्ठावीसा, एगुणतीसा, तीसा, एकतीसा, एगं चेति । एएसि विवरणा जहा सत्तरीए ।

एथ भूओकाराणि सत्त, पणुवीसाइ-एगतीसपज्जवसाणाणि, एक्काओवि एक्क तीसाए जाइ त्ति भूओकारा अट्ठ

कैसे ? इसका समाधान इस प्रकार है बाइस से इक्कीस को गमन नहीं होता है क्योंकि मिथ्यादृष्टि सासादन भाव को प्राप्त नहीं होता है । इक्कीस से भी सतरह के बन्ध को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि सासादन वाला सम्यक्त्व को न प्राप्त होता, नियम से मिथ्यात्व को प्राप्त होता है अतः बाईस से सतरह को प्राप्त हो सकता है । अवस्थित बन्ध दस है । अवक्तव्य एक है ।

नाम कर्म के प्रकृति स्थान आठ है:—वे इस प्रकार हैं—तेवीसका, पच्चीसका, छब्बीसका, अट्ठावीस का, एक ऊनतीस का, तीसका, इक्कत्तीसका और एक का । इन की विवरण सत्तरी के समान है ।

यहां नाम कर्म में भुजाकार सात हैं, पच्चीस से एक तीस पर्यन्त । एक से भी एक्कतीस में जाता है । भुजाकार सात हैं ।

अल्पतर काणि णाणाजीवे पडुच्च सत्त, एक्कतीसाई तेवीसंताणि एक्कतीसाओ तीसगमणं देवत्त गयस्स, तओ चयं तस्स एगुणतीस-गमणं अट्ठवीसाइतो एक्क गमणं, सामन्न जीवाणं तीसाओ तेवीसंगमणं, तम्हा समन्नेण सत्त अप्पतराणि । अवट्ठियाणि अट्ठ । अवत्तव्वगमेगं (लिंग) णाणावरणीय वेयणीय आउगोयअंतराइ गाणं एक्केक्के पगइट्ठाणं । बन्धपडुच्च एकं अवट्रियं । वेयणीय वज्जाणं अवत्तव्व बन्धो एक्को ॥४३॥

एवं भूओकार बन्धाइणि

वक्खाणि याणि ।

अल्पतर नाना जीवों की अपेक्षा सात हैं। वे एकतीस को आदि लेकर तेवीस तक हैं । एक्कतीस से तीस को प्राप्त होना देवत्व गत के है वहां से च्युत होने वाले

के एकऊनतीस का प्राप्त होता है। अट्ठावीस से एक को प्राप्त होता है। सामान्य जीवों के तीस से तेवीस को गमन होता है अतः सामान्य से सात अल्पतर हैं।

अवस्थित आठ हैं। अवक्तव्य एक है।

ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयु, गोत्र और अन्तराय के एक एक प्रकृति स्थान है। बन्ध की अपेक्षा एक अवस्थित है।

वेदनीय के सिवाय शेष के अवक्तव्य बन्ध एक है। ऐसे भुजाकार बन्ध आदि बतलाये गये।

इयाणि बन्धसामित्तं भण्णइ

४४ वां गाथा सूत्र

सव्वासिं पगइणं मिच्छद्दिट्ठी उ बन्धेओ भणिओ।
तित्थयरा हारदुगं मुत्तूणं सेस पयडीणं ॥४४॥

व्याख्या—'सव्वासिं पगइणं' पुव्वुद्दिट्ठं वीसुत्तरं पगईसयं। तत्थ तित्थकरं च आहारदुगं च मोत्तूण सेसाओ सव्व पगईओ मिच्छद्दिट्ठी मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं बन्धइ विसेस हेऊहिय ॥४४॥

बन्ध की सब एक सौ बीस प्रकृतियों में से तीर्थंकर और आहारक द्विक इन तीन के बिना शेष ११७ प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वादि विशेष हेतुओं से बन्ध करता है।

अब कहते हैं कि :—मिथ्यादृष्टि तीर्थंकर आहारक द्विक का बन्ध क्यों नहीं करता है।

तित्थगराहारग दुगं च किं न बंधतीति चेत् ? भन्नइ—

४५ वां गाथा सूत्र

सम्मत्त-गुण-निमित्तं तित्थयरं, संजमेण आहारं
बज्झंरति सेसियाओ मिच्छत्ताईहि हेऊहि ॥४५॥

तीर्थंकर प्रकृति सम्यक्त्व गुण ४५ रूप निमित्त के होने पर ही जीव बांधते हैं संयम रूपनिमित्त के साथ होने पर ही आहारक द्विक को बांधते हैं शेष प्रकृतियों को जीव मिथ्यात्वादि हेतुओं से बांधते हैं ॥४५॥

व्याख्या—'सम्मत्तगुण निमित्तं तित्थयरं, संजमेण आहारं बन्धइत्ति । बीसाणं एगदुगाइगेहिं अन्नतरेहिं कारणेहिं तित्थकरणामंपि बद्धं सम्मद्दिट्ठिणा, जाव तस्स संमत्त भावो धरइ ताव वन्धइ, सम्मत्त भावे फिट्टेण बन्धइ, तेण तित्थ करणामं सम्मत्तपच्चयं ।

आह रगदुगं अप्पमत्त भावे वट्टमाणे, संजओ बन्धइ, ण पमत्तो, तम्हा संजमपच्चइगं । तेण एयाओ तिन्नि पगइओ मोत्तूण सेसाओ सत्तरसुत्तरसयं पगईणं बन्धइ मिच्छद्दिट्ठी मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं ॥४५॥

सम्यक्त्व गुण निमित्त के रहने पर बंधने वाली तीर्थंकर, संयम का साथ होने पर ही आहारक को जीव बांधता है। एक दो आदि अन्यतर कारणों से तीर्थंकर नाम को भी सद्दृष्टि के द्वारा बांधा गया हैं। जब तक उसके सम्यक्त्व का सद्भाव है तब तक बांधता है। सम्यक्त्व भाव के नष्ट होने पर नहीं बांधता है अतः तीर्थंकर नाम सम्यक्त्व प्रत्यय वाला है। आहारक द्विक को अप्रमत्त भाव से वर्तमान संयत बांधता है, प्रमत्त नहीं बांधता है अतः संयम प्रत्यय वाला है। इससे इन तीन प्रकृतियों को छोड कर शेष एक सौ सत्तर प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वादि हेतुओं से बाधता है।

४६ वां-गाथा सूत्र

'सोलसमिच्छत्त ता' पणवीसं होइ सासणंताओ ।
तित्थयराउदुसेसा अविरइ अंताउ मीसस्स ॥४४॥

सोलह प्रकृतियां मिथ्यात्वगुण स्थान तक ही बन्धती हैं और पचीस सासादन तक हो बन्धती है। तीर्थंकर प्रकृति और आयुद्विक—अर्थात् मनुष्य आयु और देवायु का भी बन्ध तीसरे मे नही होता है अर्थात् मिश्र गुणस्थान में नहीं होता है शेष ७४ का होता है। किन्तु अवरित में उन तीनों का भी होता है। अतः ७७ का बन्ध होता है ॥४६॥

व्याख्या—'सोलस मिच्छत्तंता' मिच्छत्तं, णपुंसमवेओ, णिरयाउगं, णिरयगई एगिंदिय-जाई, बितिचउरिंदियजाई, हुंड संठाण, छेवट्ठं संघयणं, निरयाणुपुव्वी, आयवं, थावरं, सुहुमं, अपज्जत्तगं साहारणमिति । एयासिं सोलसण्हं कम्मपगईणं

मिच्छद्दिट्ठिम्मि चेव, अन्तो मिच्छत्त-भावेण विणाएएसिं बन्धो णत्थि, एयाणि एकं तेण णिरय-एगिंदिय, विगलिंदिय-पाउग्गाणि णेरइयएगिंदिय-वियलिंदियाणं णपुंसकगं हुंड च मोत्तूण सेसा णत्थि संठाणवेया, विगलिंदियाणं सेवट्टमेव त्ति सेसाणि पडिसिद्धाणि, अप्पज्जत्तगमेगंतासुभमिति मिच्छद्दिट्ठिम्मि चेव। एयाणि सोलस पुव्वतिक सहियाणि एगूण बीसंति। एयाणि मोत्तूण सासणो एगुत्तरं पगइसयं बन्धइ। असंजय पच्चया दिगेहिं हेऊहिं सासणंताओ पणुवीसं तु त्ति सासणंताओ पणुवीसं पगईओ सासणस्स उवरिल्ला ण बन्धति त्ति भणियं भवइ। के ते भन्नइ—

थिणगिद्धितिगं, अणंताणुबन्धीणि इत्थिवेओ, तिरियाउगं, तिरियगई आद्यंत वज्जाणि चत्तारि चत्तारि संठाण संघयणाणि, तिरियाणुपुव्वी, उज्जोअं अप्पसत्थ विहायगई, दुभग, दुस्सरं अणाएज्जं नीयगोत्तमिति।

'तित्थगराउदुसेसा अविरइअंसाइ मीसस्स' त्ति तित्थकरणामं आउदुगं च मोत्तूण जाओ असंजय सम्मदिट्ठी अन्तग्गताओ पगईओ पडुच्चताओ चेव पगईओ सम्मामिच्छादिट्ठी बन्धइ। 'अन्ताउ' त्ति अन्तर्गता इत्यर्थः। अहवा असंयते जासि अन्तोऽन्तो अविरइअन्ता तासि मिस्सो वि, किमुक्तं भवति ? मिस्सम्मि प्रत्येकं व्यच्छेद प्रतिषेध सूचनार्थ-मुक्तं, तिन्नि सोलस पणुवीसा आउगदुगं च मोत्तूण सेसाओ चोवत्ताऽरि पगईओ सम्मामिच्छादिट्ठी बन्धंति। असंजयसम्मद्दिट्ठी ताओ चेव तित्थयाराउग दुगसहियाओ सत्तत्तरिपगईओ बन्धइ।

असंयत मिथ्यादृष्टि में ही मिथ्यात्व १ नपुंसकवेद २ नरकायु ३ नरकगति ४ एकेन्द्रियजाति ५ दो इन्द्रियजाति ६ तीन इन्द्रियजाति ७ चार इन्द्रिय जाति ८ हुंडक सस्थान ९ अन्तकासंहनन १० नरकानुपूर्वी ११ आतप १२ स्थावर १३ सूक्ष्म १४ अपर्याप्त १५ और साधारण १६। इन सोलह प्रकृतियों का बन्ध होता है। मिथ्यात्व में अन्त होने से मिथ्यात्व के बिना उक्त प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है। ये एकान्त रूप से नरक, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय के प्रायोग्य हैं।

नारकी, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों नपुंसक और हुंड को छोड़ कर शेष संस्थान और वेद नहीं हैं। विकलेन्द्रियों के अन्त का संहनन ही होता हैं शेष प्रतिषिद्ध हैं और अपर्याप्त। एकांत रूप से अशुभ मिथ्यादृष्टि में ही है। ये, सोलह पूर्वोक्त सहित उन्नीस १९ होती हैं। इनको छोड़कर सासादन एक सौ एक १०१ प्रकृतियों के बांधता है। किन्तु इतना विशेष है कि असंयतप्रत्यय आदि हेतुओं से बंधने वाली सासादन तक बन्धने वाली पच्चीस हैं। अर्थात् सासादन पर्यन्त बन्धने वाली प्रकृतियाँ सासादन के ऊपर नहीं बन्धती हैं यह उसका तात्पर्य है।

वे कौनसी हैं ? इसके उत्तर में कहते हैं कि :—

स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबन्धी स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति आदि और अन्त के संहनन को छोड़कर चार चार संस्थान और संहनन, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग दुस्वर, अनादेय, और नीच गोत्र।

तीर्थंकर नाम और आयुद्विक को छोड़कर जो असंयत सम्यग्दृष्टि पर्यंत प्रकृतियाँ बन्ध की अपेक्षा है और उनका ही सम्यग्मिथ्यादृष्टि बन्ध करता है।

अन्ताउ अर्थात् अन्तर्गत अथवा असयत में जिनका अन्त है उससे वे अविरतान्त हैं उनका मिश्रगुण स्थान वाला भी बन्ध करता है।

इसका तात्पर्य क्या है ? उत्तर—मिश्र में प्रत्येक (कहा है वह) व्यवच्छेद के प्रतिषेध को सूचित करने के लिये है तो तीन, सोलह, पच्चीस और आयुद्विक को छोड़कर १२० — (३ + १६ + २५) — २ = ७४ शेष चोहत्तर ७४ प्रकृतियों को सम्यग्मिथ्यादृष्टि बाँधता है और असंयत सम्यग्दृष्टि उनको ही बांधता है किन्तु तीर्थंकर और आयुद्विक १२० — (३ + १६ + २५) = ७७ सहित सतत्तर ७७ प्रकृतियों को बांधता है ॥४६॥

४७ वां गाथा सूत्र

अविरयअन्ताओ दस, विरयाविरयन्तगाया उ चत्तारि
छच्चेव पमत्तन्ता एगा पुण अप्पमत्तंता ॥४७॥

अविरत पर्यन्त ही जो दस बन्धती हैं उसके ऊपर उनका बन्ध नहीं होता है। विरताविरत पर्यंत जिन चार प्रकृतियों का बन्ध होता है उसके ऊपर उनका बन्ध नहीं होता है जो छह प्रमत्त पर्यन्त ही बन्ध को प्राप्त होती हैं उनका ऊपर बन्ध नहीं होता है और जो एक अप्रमत्त पर्यन्त ही बन्धती है—उसका उसके ऊपर बन्ध नहीं होता हैं।

व्याख्या—'अविरयअन्ताओ दस' त्ति असंजयाओ उपरिल्ला दस पगई ओ ण बन्धति, तं जहा अपच्चक्खाणा वरणा चत्तारि, मणुस्साउगं, मणुयगई, ओरालिय सरीरं, वज्जरिस भणाराय संघयणं ओरालिय अगोवंग, मणुयाणु पुव्वी य। मणुयाउग मणुयगइ पाउग्गं च देव णेरइगा असंजय सम्मद्दिट्ठी बन्धति त्ति। तिरिय-मणुए पडुच्च मणुयगइ पाओग्गाओ पगई ओ ण संभवन्ति। एए दस पुव्वुत्ता सोलस, पणुवीसा, आहार दुगं च मोत्तूण सेसाओ सत्तट्ठि, पगईओ देस विरओ बन्धइ, विरया विरयं ति काउं। 'चत्तरि' त्ति देस विरए पच्चक्खाणावरणाणं च उण्हं अन्तो,

"जो वेदेइ सो बन्धइ" त्ति वचनात् पुव्वुत्ता संजयासंजय पाओग्गाओ एताओ चत्तारि मोत्तूण सेसाओ तेसट्ठी पगईओ पमत्त संजओ बन्धइ त्ति ।

'छच्चेव पमत्तंता' इति ।

पमत्त विरयंताओ छप्पगडीओ तं जहा—असायं, अरई, सोगो अथिरं, असुभं, अजसमिति । एयाओ पमत्तप्पाओग्ग सहियाओ मोत्तूण सेसाओ आहारग-दुगसहियाओ एगूणसट्ठिपगइओ अप्पमत्त सजओ बन्धइ ।

'एक्का पुण अप्पमत्तंता' एगा पगई देवाउग अप्पमत्तद्धाए संखेज्जइमे भागे ठाइ, अप्पमत्त अयोग्गाओ देवाउगं च मोत्तूण सेसाओ अट्ठवन्नं पगईओ अपुव्वकरणो बन्धइ, ताव जा अपुव्वकरणद्धाए संखेज्ज इमो भागो त्ति ।।४७।।

असयत से ऊपर वाले देश विरतादिक दश प्रकृतियों का बन्ध नहीं करते हैं । वे इस प्रकार हैं— अप्रत्याख्यानावरण की चार, मनुष्य आयु, मनुष्य गति, औदारिक शरीर, वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिक अगोपाङ्ग और मनुष्यानुपूर्वी ।

मनुष्य आयु और मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्वी को देव और नारकी असंयत सम्यग्दृष्टि बांधते है ।

तिर्यञ्च और मनुष्य की अपेक्षा उन में मनुष्यगति प्रायोग्य प्रकृतियां संभव नहीं हैं । उन दोनो के चौथे गुणस्थान में या पाचवें में उनका बन्ध सम्भव नहीं है ।

ये दस, पूर्वोक्त सोलह, पच्चीस और आहारक द्विक को छोड़ कर शेष ८७ प्रकृतियों को देश विरत बाधता है क्योंकि वह विरताविरत है । देशविरत पर्यन्त में अप्रत्याख्यानावरण चारों का बन्ध होता है । ऊपर नहीं होता है । क्योंकि "जो उन प्रकृतियों का वेदन करता वह उनका बन्ध करता है" ऐसा आगम का वचन है । पूर्वोक्त संयतासंयत प्रायोग्य चारों को छोड़ कर शेष त्रेसठ ६३ प्रकृतियों को प्रमत्त संयत बांधता है ।

प्रमत्त विरत पर्यन्त जिन छह प्रकृतियों का बन्ध होता है उन का ऊपर के गुणस्थानों में बन्ध नही होता है वे इस प्रकार है :—

असातावेदनीय, अरति, शोक अस्थिर, अशुभ और अयश ये छह हैं ।

उक्त प्रमत्त प्रायोग्य सहित को छोड़कर शेष आहार द्विक सहित एकोनसाठ—उनसठ प्रकृतियों को अप्रमत्त संयत बांधता है ।

एक प्रकृति जोकि देवायु है अप्रमत्त काल के संख्यातवें भाग में स्थित रहती है । अप्रमत्त के अयोग्य और देवायु को छोड़कर शेष ५८ अट्ठावन प्रकृतियों को अपूर्वकरण वाला बांधता है किन्तु तब तक जब तक कि अपूर्व करण के काल में सख्यातवां भाग शेष रहे ।

४८ वाँ—गाथा—सूत्र

दो तीसं चत्तारि य, भागे भागेसु संखसन्नाए ।।
चरमे य जहा संखं, अपुव्व करणंतिया होंति ।।

अपूर्व करण के संख्यात भागों के पश्चात् दो का उसी के संख्यात भाग व्यतीत होने पर तीस का और उसी के संख्यात भाग व्यतीत होने पर चरम समय में चार का बन्ध व्युचेति होता है ।

व्याख्या—'दो तीसं' दोन्नि अपुव्वकरणद्धाए संखेज्ज इमे भाये गए णिद्दा पयलाणं बन्धो वोच्छिज्जइ पुव्वुत्ता अजोग्गा णिद्दा दुग सहियाओ मोत्तूणं सेसाओ छप्पन्नं पगडीओ अपुव्वकरणो बन्धइ, ताव जाव अपुव्व अद्धाए संखेज्ज भागा गत त्ति ।

तीसं ति अपुव्वकरणद्धाए संखेज्ज भागेसु गएसु तीसए कम्म पगईण बन्धो वोच्छिज्जइ, त जहा—

देवगई—पंचेंदियजाइ—वेउव्विय—आहारग—तेय—कम्मगइ—सरीर समचउरस—वेउव्वियाहारग-अंगो-वंग—वन्न-गंध-रस-फास-देवाणु पुव्वि-अगुरुलहु उवघाय-पराघाय उस्सास—पसत्थ-विहायगइ-तस बायर-पज्जत्तक-पत्तेय थिर-सुभ सुभग-सुस्सर-अएज्ज-णिम्माण-तित्थकरमिति । देवगइ-बन्धजोग्गाओ एयाओ तीसं पगडीओ पुव्वुत्ताओ अयोग्ग सहियाओ मोत्तूण सेसाओ छव्वीसं पगडीओ अपुव्व करणो अन्तिमे भागे बन्धइ, ताव जाव चरिम-समओ त्ति ।

'चत्तारिय य' त्ति अपुव्वकरणस्स चरिम समए चउण्णं पगईणं बन्धो वोच्छिज्जइ, तं जहा—हास-रइ-भय-दुगुंच्छत्ति

'दो तीसं गाहात्थो इमो' दोपगईओ तीसं पगइओ चत्तारि पगईओ अपुव्वकरण-द्धाए भागे भागेसु संख सन्नाए' त्ति संखेज्जइमें भागे गए संखेज्जइमे भागेसु गतेसु त्ति भाणियं भवइ । 'चरिमे य' चरिय समए य जहासेखं अपुव्व करणंमि वोच्छिज्जं त्ति ।

एएतिन्नि विगप्पा अपुव्व करणंमि भवंति । एए चत्तारि पुव्वुत्ता अप्पाओग सहिए मोत्तूण सेसाओ बावीसं पगईओ अणियट्टी बधइ, तावजाव अणियट्टि अद्धाए सखेज्जभागा गया, एक्को भागो सेसो त्ति—

अपूर्वकरण के काल के संख्यातिवें भाग के व्यतीत होने पर, निद्रा और प्रचला का बन्ध व्युच्छेद को प्राप्त होता है, पूर्वोक्त अयोग्य निद्राद्विक सहित को छोड़कर शेष छप्पन प्रकृतियाँ अपूर्व करण वाला बांधता है तब तक जब तक कि अपूर्वकरण के काल में संख्यात भाग व्यतीत हो जाते हैं ।

अपूर्व करण के काल में संख्यात भागों के बीतने पर तीस कर्म-प्रकृतियों का बन्ध व्युच्छेद हो जाता है। वे इस प्रकार हैं।

देवगति, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रियक, अहारक, तैजस, कार्मणशरीर, समचतुरस्र सस्थान, वैक्रियक, आहारक, अंगोपांग, वर्ण, रस, फास, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायो गति, त्रस, बादर, पर्याप्तक प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर। देवगति बन्ध के योग्यता या साथ वाली पूर्वोक्ति तीस प्रकृतियां अयोग्यता सहित हैं उनको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियां अपूर्वकरण के अंतिम भाग में बन्धती हैं, तब तक बन्धती हैं जब तक कि चरम समय है।

अपूर्व करण के चरम समय में चार प्रकृतियों का बन्ध व्युच्छेद को प्राप्त होता है। वे इस प्रकार हैं।

हास्य, रति, भय और ग्लानि

गाथा का तात्पर्य यह है कि:—दो प्रकृतियां, तीस प्रकृतियां और चार प्रकृतियां अपूर्व करण के काल में सख्यातवें भागों के व्यतीत होने पर और चरम समय में यथाक्रमसे अपूर्व करण में व्युच्छेद को प्राप्त होती हैं। ये तीन विकल्प अपूर्व करण में होते हैं।

इन चार पूर्वोक्त अप्रायोग्य सहित को छोड़कर शेष बावीस प्रकृतियां अनिवृत्ति में बन्धती हैं और तब तक बन्धती हैं जब तक कि अनिवृत्ति काल में संख्यात भाग व्यतीत हो जावें और एक भाग शेष रह जावे ॥४८॥

४९ वाँ—गाथा सूत्र

संखेज्जइमे सेसे, आढत्ता बादरस्स चरिमंतो।
पंचसु एक्केक्कंता, सुहुमंता सोलस हवंति॥

व्याख्या—संखेज्जइमे सेसे आढ़त्ता बायरस्स चरिमंतो पंचसु एक्केक्कंता' इति बायराणियट्टी। तस्स अद्धाए संखेज्ज इमे भागे सेसे आढ़त्ता जाव चरिम समओ त्ति। पचसु ठाणेसु पंच हगईओ एक्केक्कओ भवति।

आणियट्टि अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गएसु पुरिसवे यस्स बन्धो वोच्छिज्जइ, तं सवेयगो बन्धइ त्ति काउं।

पुव्वुत्ते अप्पा ओगे एगे पुरिसवेयस्स सहिए मोत्तूण तओ एक्कवीसं पगईओ अणियट्टी बन्धइ, ताव जाव सेसा रुद्धए संखेज्ज भागागयत्ति ।

संखेज्ज इमे सेसे कोह संजलणाए बन्धो वोच्छिज्जइ । अणंतरुत्ते अप्पा ओगे कोह संजलणा सहिए बन्धो वोच्छिज्जइ । अणंतरुत्ते अप्पाओगे माण संजलणा सहिए मोत्तूण तओं एगूणवीसं पगईओ अणियट्टी बन्धइ ताव जाव सेस द्धाए संखेज्जा भागा गयत्ति ।

संखेज्जइमे भागे सेसे माया संजलणाए बन्धो वोच्छिज्जइ । अणंतरुत्ते अप्पाओगे माया सजलण सहिए मोत्तूण सेसाओ अट्ठार पगडीओअणियट्टी बन्धइ, ताव जाव अणियट्टि अद्धाए चरिम समओत्ति ।

एए पंच विगप्पा अणियट्टिम्मि भणिया ।'सुहुमंता सोलस भवन्ति' त्ति अणियट्टि चरम समए लोभ संजलणाए बन्धो वोच्छिन्नो, अणंतरुत्ते अप्पाओगे लोभ संजलण सहिए मोत्तूण सेसाओ सत्तरस कम्म पगईओ सुहुम संपरायगो बन्धइ, ताव जाव सुहुम संपराइग द्धाए चरिम समओत्ति । ४९

५० वां—गाथा—सूत्र

सायंतो जोगंते एत्तो परओणत्थि बन्धोत्ति ।।
णायव्वो पयडीणं बन्धस्संतो अणंतोय ।।

व्याख्या— 'सातंतो जोगते' त्ति सुहुम-संपराइगस्स चरिम समए पंचणाणा-वरणा चत्तारि दंसणा वरणा जसकित्ती उच्चागोयं पंचण्हं अंतराइगाणं एएसि सोलसण्हं कम्माणं बन्धे वोच्छिन्ने अणंतरुत्ते अप्पाओ गे-एयाओ सोलस कम्म-पगईओ मोत्तूण सेसं सायावेयणिज्जं तं उवसंतखीण कसाया सजोगि केवलीय बन्धन्ति । कहं ? सजोगिणो बन्धगत्ति काउम्, सायावेयणिज्जस्स तन्वन्तो जोगंते भवइ, सजोग केवली चरिम समए इत्यर्थः ।

एत्तो परओणत्थि बन्धो'त्ति सजोगिचरमसमयाओ परओ अजोगि केवली भावे इत्यर्थः, णत्थि बन्धोत्ति बन्ध भावेण णत्थि कम्म, उदय संत भावे अत्थि चेव ।

णायव्वो पगईणं बन्धस्संते । अणंतो य' त्ति उवसंहारो एवं, जाणियव्वो पगईणं बन्धो अमुको अमुकाणं पगईणं बन्धगो, तेसिं चेव अंतो अमुगंमि अमुगो वोच्छिज्जइ त्ति ।

अणंतोयत्ति अमुगाणं कम्माणं अमुगो अंतो ण भवइ त्ति । अहवा संतो बन्धो अणंतोय भव्वाभव्वे पडुच ।।५०।।

एवं ओघेणबन्ध सामित्तं भणियं ।

४६ और ५० वाँ-गाथा-सूत्र का अर्थ

अनिवृत्ति बादर सांपराय के काल में सख्यातवें भाग के शेष रहने पर जब तक चरम समय प्राप्त होता है पाँच स्थानों में पाँच प्रकृतियाँ एक एक स्थान में एक एक रूप से अंत को प्राप्त होने वाली होती हैं।

अनिवृत्ति के काल में संख्यात भागों के व्यतीत होने पर पुरुष वेद का बन्ध व्युच्छेद को प्राप्त होता है क्योंकि उस को संवेद भाग वाला बांधता है।

पूर्वोक्त अप्रायोग्य एक में पुरुष वेद सहित में से पुरुष वेद को छोड़कर उन इक्कीस प्रकृतियों को अनिवृत्ति वाला बांधता है तब तक बांधता है जब तक कि शेष भाग काल में संख्यात व्यतीत हो जावें।

शेष संख्यात भाग में संज्वलन का बन्ध व्युच्छेद को प्राप्त होता है।

अनंतरोक्त अप्रायोग्य क्रोध संज्वलन सहित में से क्रोध संज्वलन को छोड़कर शेष बीस प्रकृतियों को अनिवृत्ति वाला बान्धता है। और तब तक बान्धता है जब तक शेष काल में संख्यात भाग व्यतीत हो जावें।

संख्यातवें भाग के शेष रहने पर मान संज्वलन का बन्ध व्युच्छेद होता है। अनंतरोक्त अप्रायोग्य मान संज्वल को छोड़कर उन उन्नीस प्रकृतियों को अनिवृत्ति वाला बान्धता है जब तक कि शेष काल में संख्यात भाग बीत जावें।

संख्यात भाग शेष रहने पर माया संज्वलन का बंध व्युच्छेद को प्राप्त होता है। अनंतरोक्त अप्रायोग्य माया संज्वलन को घटाने पर शेष अठारह प्रकृतियां अनिवृत्ति बादर वाला बांधता है। जब तक कि अनिवृत्ति बादर का चरम समय है। ये पाच विकल्प अनिवृत्ति बादर सांपराय में कहे है।

सूक्ष्म सांपराय पर्यंत में सोलह व्युत्पन्न होती हैं। अनिवृत्ति के चरम समय लोभ संज्वल का बंध व्युच्छेद होता है। अनंतोरोक्त अप्रायोग्य लोभ संज्वलन के बिना शेष सतरह कर्म प्रकृतियाँ सूक्ष्म सांपराय वाला बांधता है जब तक कि सूक्ष्म सांपराय का चरम समय है। ।।४६।।

सूक्ष्म सांपराय के चरम समय में पांच ज्ञानावरण चार दर्शनावरण यशः कीर्ति उच्च गोत्र और पांच अंतराय इन सोलह कर्मों के बंध के व्युच्छिन्न होने पर जो कि अनंत्तर उक्त अप्रायोग्य हैं। इन सोलह प्रकृतियों को छोड़कर शेष सातावेदनीय को उपशांत कषाय वाले और सयोग केवली बांधते हैं। कैसे ? क्योंकि सयोगी उनके बंधक हैं।

सातावेदनीय का बंध सयोग केवली के चरम समय तक होता है। इसके ऊपर अर्थात् सयोग केवली के चरम समय में ऊपर अयोग केवली भाव के होने पर बंध भाव रूप से कर्म बन्ध नहीं होता है। किन्तु उदय और सत्व की अपेक्षा कर्म का अस्तित्व पाया जाता है।

इसका उपसंहार इस प्रकार है कि:—अमुक के, अमुक प्रकृति का बंधक है और उनका अंत अमुक में होता है और अमुक प्रकृति बंध व्युच्छेद को प्राप्त होता है। यह जानने योग्य है। और अमुक कर्मों का अमुक अंत नहीं होता है।

अथवा विद्यमान संत बंध अनंत भी है क्योंकि भव्य और अभव्य की उस में विवक्षा है ॥५०॥

इस प्रकार संक्षिप्त में सामान्य ओघ की अपेक्षा बंध स्वामित्व कहा गया।

इयाणि आएस-सूयणत्थं भण्णइ-अब बंध स्वामित्व के आदेश को सूचित करने के लिए बतलाते है।

५१ वाँ—गाथा सूत्र

उत्तरार्ध

गइया इएसु एवं तप्पाओग्गाणमोहसिद्धाणं
सामित्तं नेयव्वं पयडीणं ठाणमासज्ज ॥५१॥

इस प्रकार गति आदिकों में तत्प्रायोग्य ओघ से प्रसिद्ध प्रकृतियों के बंध स्वामित्व को स्थान का आश्रय लेकर गति आदि मार्गणाओं में ले जाना चाहिये।

व्याख्या—'गइआइगे सु' त्ति गइइंदियाईसु चौद्दससु मग्गणट्ठाणेसु 'एवं' भणिय विहिणा 'तथाग्गाणं' त्ति णेरइयाईण जोग्गाणं 'ओघसिद्धाणं' ओघ सामित्ते पसिद्धाणं पगईण ठाणमासज्ज सामित्तं णेयव्वं भवति।

णेरइयाणं—णिरयाउगं, णिरयगई, देवाउगं, देवगई, तेसि चेव आणु पुव्वीओ, एगिंदिय-बि ति चउरिंदियजाई, वेउव्विय आहारगसरीरं, एतेसिं चेव अंगोवंगाणि आयवं, थावरं, सुहुमं, अपज्जत्तकं साहारण मिति एयाओ एगूण—वीसं पगईओ अप्पाओग्गाओ।

एयाओ मोत्तूण सेसं एगुत्तरं पगइसयं एएहिं सामित्तं णायव्वं पूर्ववत्।

णवरि तिरिया सम्मामिच्छद्दिट्ठी असंजयसम्मद्दिट्ठी य देवगइ-पाओग्ग मेव बंधंति, ण सेसंति ।

मणुयाणं जहा ओघपयइओ ।

णवरि सम्मामिच्छद्दिट्ठी असंजय-सम्मद्दिट्ठी य मणुयगई पाओग्गं ण बंधति तेसु ण उववज्जइ त्ति काउं ।

देवस्स जाणि णेरइगइ अप्पा ओग्गाणि ताणि चेव अप्पाओग्गाणि ।

णवरि एगिंदिय जाइ आयावं थावरं च मोत्तूण सेसाणि सोलस । एयाओ सोलस मोत्तूण सेसं चउरुत्तरं पगइसयं बंधति एत्थ सामित्तं णेयव्वं ।

इयाणि इंदिएसु एगिंदियबि-ति-चउरिंदियाणं णिरयाउगं, देवाउगं णिरयगई देवगई, तेसु आणु पुव्वीओ वेउव्विय, आहारग, तेसिं अंगोवंगाणि तित्थ करणामं च अप्पा ओग्गाणि ।

एयाओ एक्कारसगईओ मोत्तूण सेस णवुत्तरं पगइ सय एत्थ सामित्तं णेयव्वं ।

पंचिंदियाण जहा ओघो । एवं कायाइकेसु जाणित्तू जोग्गाजोग्गं सामित्तं भाणियव्वंति । अथवा बंध सामित्तं वि जओ एत्थ पढियव्वो ।।

पगइ बंधो समत्तो ।।५१।।

गति आदि चौदह मार्गणाओं में या मार्गणास्थानों इस प्रकार अर्थात् कथित विधि के अनुसार 'तत्प्रायोग अर्थात् नरक आदि के योग्य ओघ या समास स्वामित्व से प्रसिद्ध प्रकृतियों का स्थान के आश्रय को करके स्वामित्व को ले जाना चाहिए ।

नारकी जीवों के—नरक आयु नरक गति, देवायु देवगति और नरकगत्यानु पूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, दो-तीन और चारइन्द्रिय जाति, वैक्रियक शरीर, आहारक शरीर और इन दोनों के अंगोपांग, आतप, स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्तक और साधारण इस प्रकार ये उन्नीस प्रकृतियाँ अप्रायोग्य हैं ।

इन को छोड़कर शेष एक सौ एक १२०—१९ = १०१ प्रकृतियाँ हैं इनके द्वारा बंध स्वामित्व को पूर्ववत् जानना चाहिए ।

तिर्यञ्चों के आहारक द्विक और तीर्थंकर नाम अप्रायोग्य हैं बंधने योग्य नहीं हैं इनको छोड़कर शेष १२०—३=११७ एक सौ सतरह प्रकृतियों का इनके द्वारा सामित्व जानना चाहिए ।

इतना विशेष है कि—तिर्यञ्च सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि देव गति प्रायोग्य को ही बांधते हैं । शेष को नहीं ।

मनुष्यों के जैसे ओघप्रकृतियों का बन्ध है वैसे जानना चाहिए ।

इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियों को नहीं बांधते हैं । क्योंकि वे उनमें उत्पन्न नहीं होते हैं। क्योंकि मिश्र में आयु का भी बन्ध नहीं है और मनुष्य असंयत दृष्टि भी मनुष्य आयु आदि का बन्ध नहीं करता है ।

देवों के भी जो नरकगति के अप्रायोग्य हैं वे ही बन्ध के अयोग्य हैं।

इतना विशेष है कि: एकेन्द्रिय आताप और स्थावर को छोड़कर १९-३=१६ शेष सोलह हैं ।

इन सोलह को छोड़कर शेष १२० - १६ = १०४ एक सौ चार को वे देव बान्धते हैं । यहां पर स्वामित्व को ले आना चाहिए ।

अब इन्द्रियों में एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रियों के—नरक आयु देवायु, नरक गति, देवगति और उन की अनुपूर्वियों को' वैक्रियक आहारक और उनके अंगोपाङ्गों को और तीर्थंकर नाम ये अप्रायोग्य प्रकृत में बन्ध के अयोग्य हैं ।

इन ग्यारह प्रकृतियों को छोड़कर शेष १२० – ११ = १०९ एक सौ नव प्रकृतियों का यहाँ स्वामित्व लेजाना चाहिए ।

पंचेन्द्रियों के ओघ के समान है । इस प्रकार काय आदिकों में जानकर बन्ध योग्य और बन्ध के अयोग्य स्वामित्व को बतलाना चाहिए । अथवा बन्ध स्वामित्व भी जैसा यहाँ है बढ़ना चाहिए । प्रकृति बन्ध समाप्त ।

स्थिति-बन्ध

इयाणि ठिइबन्धस्स अवसरो पत्तो तं भण्णइ, तत्थ ठिइ बन्धपुव्वं गमणिज्जाणि चत्तारि अणुओग दाराणि, तं जहा—

ठिइ बन्धट्ठाण परूवणा, णिसेग परूवणा, अबाहा कण्डयस्स परूवणा अप्पा बहुगं ति एयाणि जहा कम्मपगडिसंगहणीए ।

अद्धाच्छेदं करिस्सामि तत्थ पढमं मूलपगईणं भण्णइ—

५२-वां ५३-वां गाथा सूत्र

सत्तरि कोडाकोडी अयराणं होइ मोहणीयस्स ॥
तीसं आइमिगंते वीसं नामेय गोए य-५२ ॥
तेत्तीसुवही आउंमि केवला होइ एवमुक्कोसा ॥
मूलपयडीण एसो ठिई बाहुल्लो निसामेह-५३ ॥

व्याख्या— 'सत्तरि' त्ति 'तेत्तीसु' त्ति णाणा वरणीय-दंसणावरणीय-अन्तराइगाणं एएसिं चउण्हं कम्माणं उक्कोसतो ठिइबन्धो तीसं सागरोवम कोडां कोडीओ, तिन्नि वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।

मोहणिज्जस्स कम्मस्सुक्कोसो ठिदि बन्धो सत्तरि सागरोवम कोडाकोडीओ, सत्तावास सहस्साणि अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्म णिसेगो।

णामगोत्ताणं उक्कोसओ ठिइबन्धो वीस सागरोवम कोडाकोडीओ, बेवास सहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्म ठिती कम्म णिसेगो। आउगस्स उक्कोसओ ठिती बंधो तेत्तीस सागरोवमाणि पुव्व कोडि तिभागब्भहियाणि, पुव्व कोडि तिभागो अबाहा, अबाहए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।

स्थिति-बन्ध

अब स्थिति बन्ध का अवसर प्राप्त है। उसको बतलाते हैं। उसमें स्थिति बंध के पहले चार अनुयोग द्वारा बतलाने योग्य है। वे इस प्रकार हैं।

(१) स्थिति बंध प्ररूपणा

(२) निषेक प्ररूपणा

(३) अबाधा–काण्डक की प्ररूपणा

(४) और अल्पबहुत्व।

ये जैसे 'कर्म प्रकृति संग्रहणी' में हैं वैसे जान लेना चाहिए।

अद्धाच्छेद-काल भेद को कहूंगा। उसमे से पहले मूल प्रकृति के अद्धाच्छेद को बतलाया जाता है।

मोहनीय की सत्तर कोड़ाकोडी सागर, आदि के तीन कर्मों की और अंतराय की तीस कोडाकोड़ी सागर नाम और गोत्र की बीस कोड़ाकोडी सागर, और आयु को केवल तेंतीस सागर होती है इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति मूल प्रकृतियों की कही अब आगे जघन्य को सुनो।५२–५३।।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण वेदनीय और अंतराय की उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस कोड़ाकोड़ी सागर है। तीन सहस्र वर्ष काल अबाधा रूप है। अबाधा से रहित कर्म स्थिति कर्म निषेक हैं।

मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थिति–बन्ध सत्तर कोडाकोडी सागरोपम है। सात सहस्र वर्ष अबाधा है। अबाधा से रहित कर्म स्थिति कर्म निषेक है।

नाम गोत्र का उत्कृष्ट स्थितिबंध बीस कोड़ा कोड़ी सागर है। दो हजार वर्ष अबाधा काल है। अबाधारहित कर्म स्थिति है वह कर्म निषेक है।

आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थित तेंतीस सागर और पूर्व कोटि के त्रिभाग प्रमाण अधिक है। पूर्व कोटि त्रिभाग अबाधा है। अबाधा के बिना कर्म स्थिति कर्म निषेक है।

इयाणि जहन्निया भन्नइ

बारस अंतमुहुत्ता वेयणिए अट्ठ नामगोयाणं ॥
सेसाणंतमुहुत्तं खुड्डुभवं आउए जाण ॥१॥

व्याख्या — 'बारस' त्ति णाणदंसणावरण—मोहणिज्जंतराइमाणं जहन्नओ ठिइबन्धो अन्तोमुहुत्तं, अन्तोमुहुत्तं अबाहा, अबाहूणिता कम्माट्ठिई-कम्मणिसेगो। वेयणिज्जस्स जहन्नओ ठिई बन्धो बारस मुहुत्ताणि अंतोमुहुत्तमबाहा अबाहूणि कम्म-ट्ठिई कम्मणिसेगो।

णामगोत्ताणं जहन्नओ ठिइबंधो अट्ठमुहुत्ताणि, अतोमुहुत्तमबाहा अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।

आउगस्स जहन्नओ ठिइबन्धो खुड्डा भवग्गहण, अन्तो मुहुत्तमबाहा अबाहूणिया कम्माठ्ठिई कम्मणिसेगो ॥१॥

इयाणि उत्तर पगईणं उक्कोसओ अद्धाच्छेओ तं जहा—

पचण्ह णाणावरणीयाणं, नवण्ह दसणावरणीयाण, असायवेयणीयस्स, पचण्हमंतराइगाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो तीस सागरोवम कोडाकोडीओ, तिन्निवास सहस्साणि—अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। सायावेयणीय इत्थिवेय मणुय गइ-मणुयाणु पुव्वीण उक्कोसओ ठिइबन्धो पन्नरस सागरोवम कोडाकोडीओ, पन्नरस-वास-सयाणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।

सोलस कसायाण उक्कोसओ ठिइबन्धो चत्तालीस सागरोवम कोडाकोडीओ, चत्तारिवास सहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो —

नपुंसक-वेय-अरइ-सोग-भय-दुगंछा णिरयगइ तिरियगइएगिंदिय जाइ-ओरालिय वेउव्विय-तेय-कम्मइग सरीर हुंडसंठान-ओरालिय-वेउव्वियां गोवंग-सेवट्ठ संघयण-वण्ण-गंध-रस फास-णिरयाणुपुव्वि-तिरियाणु अगुरुलहु उवघाय-पराघाय-ऊसास-आयाव-उज्जोय-अपसत्थविहायगई-तस-थावर-बादर-पज्जत्तग-पुव्विपत्तेय-अथिर-असुभ-दुभग-दुसर-अणाएज्ज अजसकित्ति-णिम्माण णीयागोत्ताणं उक्कस्सगो ठिइबन्धो वीस सागरोवम कोडा कोडीओ, दो वास सहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो।

पुरिस वेय-हास-रइ-देवगइ समचउरंससंठाण-वज्जरिसभणाराय संघयण-देवगइ-आणुपुव्वि-पसत्त विहायगइ-थिर-सुभग-सुस्सर-आएज्ज-जस कित्ति-उच्चागोय

मिति एएसि कम्माणं उक्कोससगो-ठिइ बन्धो दससागरोवम-कोडाकोडीओ, दसवास सयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो ।

णग्गोहसंठाण रिहुसणाराय संघयणाणं उक्कोसओ ठिइबंधो बारस सागरोवम कोडा कोडीओ बारस-वाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो ।

साइसंठाण-णाराय संघयणाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो चोद्दस-सागरोवम कोडा कोडीओ चोद्दस वास सयाणि अबाहा अबाहूणिया ठिई णिसेगो ।

खुज्ज संठाण अद्धनाराय संघयणाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो सोलस-सागरोवम कोडाकोडीओ, सोलसवास सयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो ।

वामण संठाण खीलिय संघयण बेइ दिय तेइंदिय चोरिंदियजाइ-सुहुम-अप-ज्जत्तग-साहारणणामाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो अट्ठारस सागरोवम कोडाकोडीओ, अट्ठारस वास सहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो ।

आहारग सरीर-अंगोवंग-तित्थ करणामाण उक्कोसओ ठिइ बन्धो अंतो कोडा कोडी, अंत मुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेगो ।

देव-णिरयाउगाणं उक्कोसगो ठिइ बन्धो तेत्तीस सागरोवमाणि, पुव्व कोडि ति भाग हियाणि, पुव्व कोडि तिभागो अबाहा, अबाहाए विणा कम्मठिई कम्मणि-सेगो ।

मणुय-तिरियाउगाणं उक्कोस ट्ठिई तिन्नी पलिओवमाणि पुव्वकोडिति भाग सहियाणि पुव्व कोडि ति भागो अबाहा, अबाहाए विणा कम्म ठिई कम्म णिसेगो ।

उक्कोसो अद्धा च्छेदो सम्मत्तो

इयाणिंजहण्णओ अद्धाच्छेओ पंचण्हं णाणावरणाणं चउण्हं दंसणावरणाणं लोभसंजलणपंचण्हमन्तराइगाणं जहन्नतो ठिइबन्धो अन्तोमुहुत्तिओ, अन्तोमुहुत्त मबाहा, अबाहू णिया कम्मट्ठिई कम्मं णिसेगो ।

थीणगिद्धितिग—निद्दापयला-असायवेय णीयाणं जहन्नओ ठिइ-बन्धो सागरो-वमस्स तिन्नि सत्तभागा पलिओ वमस्स असंखेज्जइ भागे णूणया, अन्तो मुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिइ कम्मणिसेगो ।

मिच्छत्तजहन्नओ ठिइबन्धो सागरोवमस्स सत्तसत्तभागा, पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागेण ऊणया अन्तोमुहुत्तमबाहा अबाहूणीया कम्मठिई कम्मनिसेगो ।

संजलण वज्जाणं बारसण्हं कसायाणं जहन्नओ ट्ठिइबन्धो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिओवमासंख भागेण ऊणय, अंतोमुहुत्तमबाहा ।

कोह संजलणाए जहन्नओ ट्ठिइबन्धो बे मासा अन्तो मुहुत्तमबाहा ।

माणसंजलणाए जहन्नओ ट्ठिइबन्धो मासो, अन्तो मुहुत्तमबाहा ।

माया संजलणाए जहन्नओ ट्ठिइबन्धो अद्धमासो, अन्तोमुहुत्तमबाहा ।

पुरिसवेयस्स जहन्नओ ट्ठिइबन्धो अट्ठवासाणि, अन्तोमुहुत्तमबाहा ।

पुरिसवेयवज्जाणं णोकसायाणं मणुय तिरियगइ (इगदुति चउ) पचेंदिय जाइ ओरालियतेया कम्मइग सरीर छण्ह ।

संठाणाणं ओरालिय अंगो वंगं छण्हं संघयणाण वण्णाइ ४ तिरियमणुयाणु-पुव्वि-अगुरुलहुघात-पराघात उसास-आयाव-उज्जोय-पसत्थापसत्थ दो विहायगइ तस-थावराइ बीस जसवज्ज णिम्माणं णीयगोयाण जहन्नओ ट्ठिइ बन्धो सागरोवमस्स वेसत्त $\frac{3}{7}$ भागा पलिओ वमस्स असखेज्जइ भागेणूणया, अन्तो मुहुत्तमबाहा ।

देवगइ-तिरयगइ-वेउव्वियसरीर वेउव्वि अंगो वग-णिरयदेवाणु-पुव्वीण एएसिं कम्माण जहन्नगो ठिइबन्धो सागरोवमस्स बेसत्त भागा $\frac{3}{7}$ (सहस्सगुणिया) पलिओ-वमस्सव असंखेज्जइ भागेणूणया, अतोमुहुत्तमबाहा ।

एय असण्णिसुल ब्भइ ।

अणियट्टि खवग इसुजाणि कम्माणि लब्भन्ति ताणि मोत्तूण सेसाणि बायर एगिंदिय पज्जत्त-गमि लब्भन्ति ।

आहारक सरीर- आहारकागे-वग-तित्थकरणामाण जहन्नओ ट्ठिइबन्धो अतो कोडाकोडी अतो मुहुत्तमबाहा ।

उक्को साओ सखेज्ज गुणहीणो जहन्नओ ट्ठिइबन्धो ।

जस कित्ति उच्चा गोयाण जहन्नओ ट्ठिइबन्धो अट्ठमुहुत्ता अतो मुहुत्तमबाहा (सव्वत्थ अबाहा विणा कम्माठिई कम्म-णिसेगो), देव-णिरयाउगाणं जहन्नओ ठिइबन्ध दसवास सहस्साणि अतो मुहुत्तमबाहा, अबाहाविणा कम्माट्ठिई कम्मणिसेगो ।

मणुय तिरियाउगाण जहन्नओ ट्ठिइबन्धो खुड्डागभवग्गहणं, अतो-मुहुत्तमबाहा, अबाहाए विणा कम्माट्ठिई कम्मणिसेगो ।

जहन्नओ अद्धाच्छेओसमत्तो

हिन्दी में सारांश

वेदनीय का जघन्य स्थिति बन्ध बारह अन्तर्मुहूर्त है । नाम और गोत्र का जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त है । ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अतराय का जघन्य स्थिति बन्ध अन्तमुहूर्त, आयु का जघन्य स्थिति बन्ध क्षुद्र भव ग्रहण है । इनका अबाधा काल अन्तर्मुहूर्त है । और अबाधा रहित कर्म स्थिति कर्म निषेक है ।

उत्तर प्रकृतियों का स्थिति बन्ध मूल के अनुसार लगा लेना चाहिए ।

इयाणि मूलुत्तर पगईणं साइ अणाइ परूवणा भन्नइ—

अब मूल प्रकृतियों की सादि अनादि प्ररूपणा बतलाते हैं : —

५४ वां गाथा सूत्र

मूलठिई अजहन्नो सत्तण्हं साइयाइयो बंधो ॥
सेसतिगे दुविगप्पो, सोउयचउक्केवि दुविकप्पो ॥५४॥

व्याख्या—'मूल ठिईण अजहन्नो' मूल पगईणं ठिई मूलठिई।

मूल प्रकृतियों की स्थिति मूल स्थिति है। मूल स्थिति (बन्ध) का जघन्य मूल स्थिति जघन्य है।

पुव्वं ताव जहन्नाईणं लक्खणं भन्नइ-पहले तब तक जघन्यादि का लक्षण बतलाते हैं।

जओ अण्णो खुड्डुलतरओ ठिइबन्धो नत्थित्ति सो जहन्नओ ठिइबन्धो वुच्चइ

जिसका अन्य अल्पतर स्थिति बन्ध है वह जघन्य स्थिति बन्ध कहा जाता है।

तं मोत्तूण सेसो सव्वो समयाहिगाइओ अजहन्नो ठिइबन्धो ताव जाव उक्कोसगोत्ति।

उसके बिना शेष सब समय अधिक आदि अजघन्य स्थिति बन्ध है वह तब तक है जब तक उत्कृष्ट बन्ध हो।

एएसु दोसु सव्वे ठिइविसेसा पविट्ठा इन दो स्थिति बन्धो में सब स्थिति विशेष प्रविष्ट है अन्तर्भूत है।

जओ अन्नो उक्कोसतरो ठिइबन्धो णत्थि त्ति सो उक्कोसो, तं मोत्तूण सेसो सव्वो समयाइणा ऊणो ताव जाव जहन्नो त्ति से अणुक्कोसो वुच्चइ।

एएसु वा दोसु सव्वे ठिई विसेसा पविट्ठा।

जिससे अन्य उत्कृष्ट तर बन्ध नहीं है वह उत्कृष्ट बन्ध है। उसको छोड़कर शेष सब समयादिक न्यून तब तक है जब तक कि जघन्य वह अनुत्कृष्ट कहा जाता है। अथवा उक्त इन दोनों में सब स्थिति विशेष प्रविष्ट हैं।

एएण अट्ठपदेण मूलपगईणं आउग वज्जाणं सत्तण्हं अजहन्नओ ठिइ बन्धो साइयाइ चउविप्पो लब्भइ।

इस अर्थ पद से आयु के बिना मूल सात प्रकृतियों का अजघन्य स्थिति बंध सादि आदि चार भेद को प्राप्त होता है।

कहं ? कैसे ? भन्नइ, कहते हैं मोहवज्जाणं छण्ह जहन्नओ ठिइ बन्धो सुहुमराग खवगस्स चरिमो ठिइबन्धो, सो साइ अधुवो य ।

मोह के बिना छह का जघन्य स्थिति बन्ध सूक्ष्मराग क्षपक का चरम स्थिति बन्ध है, और वह सादि और अध्रुव है कहं? कैसे? भन्नइ, बतलाते हैं—

खवगस्स सव्व-थोवाओ अजहन्न ठिइ बन्धाओ जहन्न ठिइ बन्धं संकमंतस्स जहन्नस्स माइओ, तओ बन्धो वरमे जहन्नस्स अधुवो, त मोत्तूणं सेसो अजहन्नो, सुहुमावसामगम्मि तओ दुगुणो ठिइबन्धो त्ति अजहन्नो ।

क्षपक के सब से अल्प अजघन्य स्थिति बन्ध से जघन्य स्थिति बन्ध को संक्रमण करने वाले के घन्य का अध्रुव स्थिति बन्ध होता है, उस को छोड़कर शेष अजघन्य है । सूक्ष्म-उपशमक में उस से दुगुना स्थिति बन्ध होता है वह अजघन्य है ।

उवसंत कसायस्स बन्धो णत्थि, तओ गुणो परिवडंतस्स अजहन्नठिइ बन्धो साइओ ।

उपशांत कषाय वाले के स्थिति बन्ध नहीं है और उस से गिरने वाले के अजघन्य स्थिति बन्ध सादि होता है ।

बन्धो परमो जेण ण कय पुव्वो तस्स अणाइओ ।

जिससे द्वारा बन्ध का उपरम नहीं किया गया उस के अनादि बन्ध होता है ।

धुवो अभव्वस्स बंधो, जओ बध वोच्छेय जहन्नग वा ठिइ बंध ण करेहित्ति ।

अभव्य के ध्रुव बध होता है क्यों कि वह बधका व्युच्छेद या जघन्य स्थिति बंध नहीं करता है ।

अद्धुवो भव्वाणं, णियमा बंधवोच्छेय काहिंति त्ति ।

भव्यों के अध्रुव बन्ध है क्यों कि वे नियम से या विकल्प से बन्ध का व्युच्छेद करते हैं ।

एव मोह णिज्जस्सवि । णवरि सव्वजहन्नो अणियट्टिखवगस्स चरमो ठिइबन्धो तओ भावेयव्वं ।

इस प्रकार मोहनीय का भी स्थिति बध है । इतना विशेष है कि सर्व जघन्य अनिवृत्तिक्षपक का चरम स्थिति बंध है । उस के लिए विचार कर लेना चाहिए ।

'सेसतिगे दुविगप्पो' उक्कोस-अणुक्कोस जहन्नेसु दुविगप्पो, साइओ अद्धुवो य ।

उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य इन तीनों मे दो विकल्प वाला सादि और अध्रुव स्थिति बध होता है ।

जहन्ने दुविगप्प कारण पुव्वुत्त । जघन्य मे दो विकल्प है कारण पूर्व में कहे गये के समान है ।

उक्कोसो ठिइ बन्धो सत्तण्हवि सन्निम्मि मिच्छदिट्ठिम्मि सव्व संकिलिट्ठंमि लब्भइ सो साईओ अद्धुवोय ।

उत्कृष्ट स्थितिबंध सातों का भी सैनी में मिथ्यादृष्टि में सर्व संकिलष्ट वाले में प्राप्त होता है । वह सादि और अध्रुव है ।

कहं ? कैसे ? (समयाओ) आढ़त्तो अंतो मुहुत्ताओ णियमा फिट्टइ त्ति, तओ पडिवडं तस्स अणुक्कोसस्स साइओ, पुणो जहन्नेणं अंतो मुहुत्तेणं, उक्कोसेण अणं-ताहिं ओमप्पिणि उस्सप्पिणीहिं उक्कोसं ठिइबन्धमाणस्स अणुक्कोसस्स अद्धुवो, उक्कोसस्स साइओ, पुणो अद्धुवो एवं उक्कोसाणुक्कोसेसु परिभमतित्ति दोण्हवि साइओ अद्धुवो य ।

सेसा धुव अणाइय बन्धा णसं भवन्ति । 'आउ चउक्केवि दुविगप्पो' त्तिउक्को सोमणुक्कोसो जहन्नो अजहन्नो य ठिइ बन्धो आइगो अद्धुवो य अद्धुवबन्धा देव ॥५४॥

समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त में नियम से नष्ट होजाता है । उससे गिरने वाले के अनुत्कृष्ट सादि स्थितिबन्ध होता है । और जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट रूप से अनन्त उत्पसर्पिणी उत्सर्पिणियों के पश्चात् उत्कृष्ट स्थिति बन्ध करने वाले के अनुत्कृष्ट अध्रुव बन्ध होता है । उत्कृष्ट वाले के सादि और अध्रुव इस प्रकार उत्कृष्ट अनुत्कृष्टों में परिभ्रमण करते हैं दोनों के भी सादि और अध्रुव बन्ध होता है ।

शेष ध्रुव और अनादिबन्ध उनके सम्भव नहीं है ।

'आयुचतुष्क में भी दो विकल्पवाला' अर्थात् उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थिति बन्ध सादि और अध्रुव है वह भी अध्रुव होने से ही है ॥ ५४ ॥

इयाणि उत्तर पगईणं भन्नइ अब उत्तर प्रकृतियों के (ध्रुवादि) स्थिति बन्ध को बतलाते हैं । तथा सादि और अनादि अध्रुव और ध्रुव को बतलाते हैं ।

५५ वां गाथा सूत्र

अट्ठारस-पयडीण अजहन्नो बन्ध चउविगप्पोय ॥
साईअ-अधुवबन्धो, सेसतिगे होइ बोद्धव्वो ॥५५॥

व्याख्या—'अट्ठारस पगईणं अजहन्नो बन्ध चउविगप्पो त्ति, पंचण्हं णाणा-वरणीयाणं, चउण्हं दसणावरणीयाण, चउण्हं संजलणाण, पञ्चण्हमंतराइमाण, एएसि अट्ठारसण्हं अजहन्नओ ठिइ बन्धो साइमाइ-चउविगप्पो लब्भइ ।

पांच ज्ञानवर्णीय, चारदर्शणावर्णीय चार सज्वलण और पांच अन्तराय इन अठारह का अजघन्य स्थिति बन्ध सादि आदि चार भेद वाला प्राप्त होता है ।